॥ श्रीः ॥

श्रीगोस्वामी नारायणदास नाभाजी विरचित

# श्रीभक्तमाल

(मूलार्थबोधिनी टीका सहित)

टीकाकार

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय वाचस्पति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य

श्रीगोस्वामी नारायणदास नाभाजी विरचित

# श्रीभक्तमाल

## (मूलार्थबोधिनी टीका सहित)

टीकाकार

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य

संपादक

डॉ. रामाधार शर्मा, नित्यानन्द मिश्र, मनीषकुमार शुक्ल

प्रकाशक

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय

कर्वी, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, भारत – २१०२०४

दूरभाष – (९१) (५१९८) २२४४१३, २२४४८१, २२४४२६३

प्रथम संस्करण (२१०० प्रतियाँ)

मकर संक्रान्ति विक्रम संवत् २०७०

(१४ जनवरी २०१४ ईस्वी)

ISBN 978-93-82253-04-4

© सर्वाधिकार

टीकाकार के अधीन

न्यौछावर

₹ ४००/– (चार सौ रुपए मात्र)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

(१) जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय

कर्वी, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, भारत – २१०२०४

(२) श्रीतुलसीपीठ सेवा न्यास, आमोदवन

चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत – ४८५३३१

अक्षरसंयोजक

नित्यानन्द मिश्र

मुद्रक

नीलम मुद्रणालय, ६६/८७ए, कच्छियाना मोहल

कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत – २०८ ००१

दूरभाष – (९१) (५१२) २१५०१६३, (९१) ९०४४२ २६६४९

# विषयसूची


संपादकीय १

प्राक्कथन ५

१ पूर्वार्ध १९

पद १–४: मङ्गलाचरण एवं श्रीनाभाजीका परिचय १९

पद ५: भगवान्‌के चौबीस अवतार २३

पद ६: श्रीरामके चरणचिह्न ३०

पद ७: प्रधान द्वादश भक्त ३५

पद ८: भगवान् नारायणके सोलह पार्षद ३७

पद ९: हरिवल्लभ ३९

पद १०: जिनके हरि नित उर बसैं ५०

पद ११: भक्तोंकी चरणधूलियाचना ५३

पद १२: जे जे हरिमाया तरे ५९

पद १३: नौ योगेश्वर ६४

पद १४: नवधा भक्तिके नौ आदर्श ६४

पद १५: भगवत्प्रसादके स्वादज्ञाता ६६

पद १६: भगवद्ध्यानपरायण ऋषिगण ६७

पद १७: अष्टादश पुराण ६८
पद १८: अष्टादश स्मृति ७०
पद १९: श्रीरामके मन्त्री ७१
पद २०: श्रीरामके सहचर यूथपति ७१
पद २१: नौ नन्द ७२
पद २२: श्रीराधाकृष्णपरिकर ७३
पद २३: श्रीकृष्णके अन्तरङ्ग सेवक ७४
पद २४: सप्तद्वीपके दास ७४
पद २५: जम्बूद्वीपके भक्त ७५
पद २६: श्वेतद्वीपके भक्त ७६
पद २७: अष्ट द्वारपाल सर्प ७७

२ उत्तरार्ध ७९
पद २८: चार संप्रदाय और आचार्य ७९
पद २९: चतुःसंप्रदायविवरण ८२
पद ३०: भक्तिवितान ८३
पद ३१: जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य ८४
पद ३२: चार दिग्गज महंत ८५
पद ३३: श्रीलालाचार्य ८५
पद ३४: श्रीपादपद्माचार्य ८६
पद ३५: श्रीरामानन्दपद्धति ८७
पद ३६: जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य ९०
पद ३७: श्रीअनन्ताचार्य और शिष्य ९२
पद ३८: श्रीकृष्णदास पयहारी ९३
पद ३९: श्रीपयहारीजीके शिष्य ९५

पद ४०: श्रीकील्हदासजी ९६
पद ४१: श्रीअग्रदासजी ९६
पद ४२: जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी ९७
पद ४३: श्रीनामदेवजी १००
पद ४४: श्रीजयदेवजी १०२
पद ४५: श्रीधरीटीकाकार श्रीधराचार्यजी १०४
पद ४६: श्रीबिल्वमङ्गलजी १०७
पद ४७: श्रीविष्णुपुरीजी १०९
पद ४८: श्रीज्ञानदेवजी और श्रीवल्लभाचार्यजी ११०
पद ४९: प्रेम की प्रधानता ११२
पद ५०: भक्तनिष्ठा ११३
पद ५१: दो भक्तोंके आशय ११५
पद ५२: भगवान्‌के द्वारा भक्तोंकी वाणी का सत्यापन ११७
पद ५३: भक्तोंके संग भगवान् १२०
पद ५४: भक्तोंके प्रति आश्चर्य १२३
पद ५५: भगवान् रामकी कृपा १२५
पद ५६: वेषनिष्ठ राजा १२६
पद ५७: अन्तर्निष्ठ राजा १२७
पद ५८: गुरुवचनविश्वास १२८
पद ५९: श्रीरैदासजी १२९
पद ६०: श्रीकबीरदासजी १३२
पद ६१: श्रीपीपाजी १३५
पद ६२: श्रीधनाजी १३८
पद ६३: श्रीसेनजी १३९

पद ६४: श्रीसुखानन्दजी १४०
पद ६५: श्रीसुरसुरानन्दजी १४२
पद ६६: श्रीसुरसुरीजी १४३
पद ६७: श्रीनरहर्यानन्दजी १४४
पद ६८: श्रीपद्मनाभजी १४५
पद ६९: श्रीतत्वाजी और श्रीजीवाजी १४६
पद ७०: श्रीमाधवदासजी १४७
पद ७१: श्रीरघुनाथगुसाईंजी १४८
पद ७२: श्रीनित्यानन्दजी और श्रीकृष्णचैतन्यजी १४९
पद ७३: श्रीसूरदासजी १५०
पद ७४: श्रीपरमानन्ददासजी १५१
पद ७५: श्रीकेशवभट्टजी १५२
पद ७६: श्रीभट्टजी १५३
पद ७७: श्रीहरिव्यासदेवजी १५३
पद ७८: श्रीदिवाकरजी १५४
पद ७९: श्रीविट्ठलनाथजी १५५
पद ८०: श्रीविट्ठलगोस्वामीजीके सात पुत्र १५६
पद ८१: श्रीकृष्णदासजी १५७
पद ८२: श्रीवर्धमानगंगलजी १५८
पद ८३: श्रीक्षेमगुसाईंजी १५९
पद ८४: श्रीविट्ठलदासजी १६०
पद ८५: श्रीहरिरामहठीलेजी १६१
पद ८६: श्रीकमलाकरभट्टजी १६१
पद ८७: श्रीनारायणभट्टजी १६२

पद ८८: श्रीव्रजवल्लभजी १६२
पद ८९: श्रीसनातनगोस्वामीजी और श्रीरूपगोस्वामीजी १६३
पद ९०: श्रीहितहरिवंशगोस्वामीजी १६४
पद ९१: श्रीहरिदासजी १६५
पद ९२: श्रीव्यासजी १६६
पद ९३: श्रीजीवगोस्वामीजी १६७
पद ९४: श्रीवृन्दावनमाधुरीके रसिक भक्त १६८
पद ९५: श्रीरसिकमुरारिजी १६९
पद ९६: भवप्रवाहके अवलम्बन भक्त १७०
पद ९७: कलियुगके कल्पवृक्ष भक्त १७२
पद ९८: कलियुगके कामधेनु भक्त १७३
पद ९९: कलियुगके चिन्तामणि भक्त १७४
पद १००: कलियुगके दिग्गज भक्त १७४
पद १०१: तीन धामोंके भगवत्सेवक भक्त १७५
पद १०२: भगवद्भक्त कवि १७६
पद १०३: मथुरानिवासी भक्त १७६
पद १०४: कलियुगकी भक्तराज महिलाएँ १७७
पद १०५: श्रीहरिके सम्मत भक्त १७८
पद १०६: भक्त भगवान्‌से अधिक १७९
पद १०७: श्रीलाखाजी १८०
पद १०८: श्रीनरसीभक्तजी १८१
पद १०९: श्रीयशोधरजी १८३
पद ११०: श्रीनन्ददासजी १८४
पद १११: श्रीजनगोपालजी १८५

पद ११२: श्रीमाधवकी लोटाभक्ति १८५
पद ११३: श्रीअंगदजी १८६
पद ११४: राजा श्रीचतुर्भुजजी १८७
पद ११५: श्रीमीराबाईजी १८८
पद ११६: राजा श्रीपृथ्वीराजजी १८९
पद ११७: भगवद्भक्त राजागण १९०
पद ११८: खेमालवंशविवरण १९१
पद ११९: श्रीरामरयनजी १९१
पद १२०: श्रीरामरयनजीकी पत्नी १९२
पद १२१: श्रीकिशोरसिंहजी १९३
पद १२२: राजा श्रीहरिदासजी १९४
पद १२३: श्रीचतुर्भुजदासजी १९४
पद १२४: श्रीकृष्णदास चालकजी १९५
पद १२५: श्रीसंतदासजी १९६
पद १२६: श्रीसूरदासमदनमोहनजी १९६
पद १२७: श्रीकात्यायनीबाईजी १९७
पद १२८: श्रीमुरारिदासजी १९८
पद १२९: श्रीभक्तमालके सुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी १९८
पद १३०: श्रीमानदासजी २०९
पद १३१: श्रीगिरिधरजी २१०
पद १३२: श्रीगोकुलनाथजी २१०
पद १३३: श्रीबनवारीदासजी २११
पद १३४: श्रीनारायणमिश्रजी २१२
पद १३५: श्रीनारायणदासजी २१२

पद १३६: श्रीवामनहरिदासजी २१३
पद १३७: श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी २१४
पद १३८: श्रीगदाधरभट्टजी २१५
पद १३९: चौदह भक्तचारण २१७
पद १४०: कविराज राजा श्रीपृथ्वीराजजी २१८
पद १४१: चन्द्रवंशी श्रीशिवाजी २१९
पद १४२: भक्तरानी रत्नावतीजी २२०
पद १४३: श्रीजगन्नाथजी २२१
पद १४४: श्रीमथुरादासजी २२२
पद १४५: श्रीनर्तकनारायणदासजी २२२
पद १४६: एते जन भए भूरिदा २२३
पद १४७: श्रीनाभाजीके यजमान भक्त २२४
पद १४८: श्रीनागाचतुरदासजी २२५
पद १४९: मधुकरिया भक्त २२५
पद १५०: श्रीअग्रदासके प्रसिद्ध शिष्य २२७
पद १५१: श्रीटीलाजी और श्रीलाहाजीकी पद्धति २२७
पद १५२: श्रीकान्हरजीका महोत्सव २२८
पद १५३: श्रीनीवाजी और श्रीखेतसीजी २२९
पद १५४: श्रीतोमरभगवानजी २३०
पद १५५: श्रीजसवन्तजी २३१
पद १५६: श्रीतुलाधारहरिदासजी २३१
पद १५७: भक्तयुगलजोड़ी २३२
पद १५८: श्रीकील्हदासजीके शिष्य २३३
पद १५९: श्रीनाथभट्टजी २३४

पद १६०: श्रीकरमैतीबाई २३४
पद १६१: श्रीखड्गसेनजी २३५
पद १६२: श्रीगंगग्वालजी २३६
पद १६३: श्रीदिवाकरश्रोत्रियजी २३७
पद १६४: श्रीलालदासजी २३८
पद १६५: श्रीमाधवग्वालजी २३९
पद १६६: श्रीप्रयागदासजी २३९
पद १६७: श्रीप्रेमनिधिजी २४१
पद १६८: श्रीराघवदासजी दुबले २४१
पद १६९: दासत्वके चौकी भक्त २४२
पद १७०: सुबल अबला भक्तगण २४३
पद १७१: श्रीकान्हरदासजी २४४
पद १७२: श्रीकेशवदासजी और श्रीपरशुरामदासजी २४४
पद १७३: श्रीकेवलरामजी २४५
पद १७४: श्रीआसकरणजी २४६
पद १७५: निष्किञ्चनभक्तभजक श्रीहरिदासजी २४७
पद १७६: श्रीकल्याणदासजी २४८
पद १७७: श्रविट्ठलदास रैदासीजी २४९
पद १७८: भारी भक्त २५०
पद १७९: वेषनिष्ठ राजा श्रीहरिदासजी २५१
पद १८०: श्रीकृष्णदासस्वर्णकारजी २५२
पद १८१: भक्त संन्यासीगण २५३
पद १८२: श्रीद्वारकादासजी २५४
पद १८३: श्रीपूरणदासजी २५५

पद १८४: श्रीलक्ष्मणभट्टजी २५५
पद १८५: सिंहको मांसदाता श्रीकृष्णदास पयहारीजी २५६
पद १८६: श्रीगदाधरदासजी २५७
पद १८७: स्वामी श्रीनारायणदासजी २५७
पद १८८: श्रीभगवानदासजी २५८
पद १८९: श्रीरामभक्त श्रीकल्याणदासजी २५९
पद १९०: श्रीसोभूरामजीके सहोदर दो भ्राता २५९
पद १९१: श्रीकृपालकान्हरजी २६०
पद १९२: प्रथम भक्तमाली श्रीगोविन्ददासजी २६१
पद १९३: राजा श्रीजगतसिंहजी २६२
पद १९४: श्रीगिरिधरग्वालजी २६२
पद १९५: श्रीगोपालीमाँ २६३
पद १९६: श्रीयुत श्रीरामदासजी २६४
पद १९७: श्रीरामरायजी २६४
पद १९८: श्रीभगवंतमुदितजी २६५
पद १९९: श्रीभक्तमालविश्रामभक्ता श्रीलालमतीजी २६६
पद २००: सबसे श्रेष्ठ हरिभक्त २६६
पद २०१: भगवत्प्रिय भक्त सुयश २६८
पद २०२: संतचरितश्रवणमें आस्तिकता २६८
पद २०३-२१४: श्रीभक्तमालका उपसंहार २६९

श्रीभक्तमालजीकी आरती २७३

सङ्केताक्षरसूची २७५

पदानुक्रमणिका २७७

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# संपादकीय

**रामभद्र गुरुदेव पर कृपा भक्त हरि की परी॥**
**मानस को कल हंस भक्तकुल बारिधि सितकर।**
**बिबुध राष्ट्र ब्रज गिरा दच्छ कबिकमल दिवाकर॥**
**ब्रह्मसूत्र उपनिषद भाष्यकर गीता मधुकर।**
**गानबिधा गंधर्ब सकल बिद्या को आकर॥**
**मूल अर्थ बोधिनि ललित भक्तमाल टीका करी।**
**रामभद्र गुरुदेव पर कृपा भक्त हरि की परी॥**

गोस्वामी श्रीनारायणदास नाभाजीद्वारा विरचित श्रीभक्तमाल भारतीय भक्तिपरम्पराकी एक अमूल्य निधि होनेके साथ-साथ भारतीय भाषा साहित्यका एक अग्रगण्य सारस्वत पुष्प भी है। लौकिक मालामें पुष्पों अथवा रत्नोंका, सूत्रका, सुमेरुका और फुँदनेका अपना-अपना महत्त्व है – और इन चारोंके रुचिकर संयोगसे ही आकर्षक मालाका निर्माण संभव है। श्रीभक्तमाल ऐसी दिव्य माला है जिसमें भक्तगण ही पुष्प अथवा रत्न हैं, परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा भक्ति ही सूत्र है, गोस्वामी तुलसीदास सरीखे गुरूपम संत अथवा भक्तिसिद्धान्तका दान देनेवाले सद्गुरुदेव ही सुमेरु हैं, और स्वयं पद्मपत्राक्ष श्रीरामकृष्णनारायणाभिन्न भगवान् ही फुँदना हैं। चारों ही श्रेष्ठ हैं और भक्तमालकार अपने प्रथम दोहेमें ही चारोंको अभिन्न बताते हैं, यथा –

**भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।**

(भ.मा. १)

तथापि मालाका नामकरण तो पुष्पों अथवा रत्नोंके आधारपर ही होता है, यथा वनमाला, वैजयन्तीमाला, तुलसीमाला, मणिरत्नमाला, इत्यादि। इसीलिये इस ललित कृतिका नाम नाभाजीने **भक्तमाल** रखा है।

एक-साथ भक्तमालके मूलपाठके सरल अर्थों और गूढ भावोंको प्रकाशित करने वाली गुरुदेव

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य कृत **मूलार्थबोधिनी टीका**का प्रथम संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम अनिर्वचनीय कृतकृत्यताका अनुभव कर रहे हैं। विगत मास अर्थात् दिसंबर २०१३में ही इस विशद टीकाका ऋतम्भराप्रज्ञासंपन्न गुरुदेवने मात्र पन्द्रह घण्टोंमें प्रणयन किया। यह कोई आश्चर्यका विषय नहीं, अपितु माता सरस्वतीके अनुग्रह और प्रभु श्रीसीतारामकी कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे गुरु श्रीअग्रदेवके आशीर्वादसे अनेकानेक भूत, वर्तमान और भावी भक्तोंके चरित्र श्रीनाभाजीके हृदयमें स्वतः प्रकाशित हो गए थे, उसी प्रकार रामानन्द संप्रदायकी आद्यगुरु भगवती सीताजीके आशीर्वादसे नाभाजी द्वारा गुम्फित अक्षरोंके मूलार्थ गुरुदेवके हृदयमें स्वतः स्फुरित हुए हैं। स्वयं गुरुदेवने छठे पदकी टीकामें कहा है कि प्रभु श्रीरामके चरणोंमें २२ नहीं अपितु २४ चिह्न उनके ध्यानमें स्फुरित हुए हैं, जिनकी व्याख्या नाभाजीने की है। मूलार्थबोधिनीके अनुशीलनके समय अनेक स्थानोंपर पाठकगण भगवदीय प्रेरणासे हुई इस दिव्य स्फुरणाका अनुभव करेंगे ही।

अस्तु। प्रणयनके पश्चात् इस टीकाका केवल दो सप्ताहोंमें पुस्तकाकार होना भी श्रीराघवकृपा और गुरुकृपाका ही परिणाम है। टीकाके प्रकाशनमें अत्यन्त महनीय योगदान दिया है हापुड़निवासी श्रीमोहन गर्गजीने। यह एक दिव्य संयोग है कि श्रीमोहन गर्गजीने मूलार्थबोधिनीके प्रणयनकी समाप्तिके दिन ही गुरुदेवसे मन्त्रदीक्षा ली है, यद्यपि गुरुदेवकी सारस्वत सेवा वे पहलेसे करते आए हैं। श्रीमोहनगर्गने बड़ी ही दक्षताके साथ ग्रन्थके टङ्कण और लिपिपरिमार्जनमें जो योगदान दिया है, उसके बिना कदाचित् ही यह संस्करण इतने अल्प समयमें मुद्रित हो पाता। आवरण पृष्ठका प्रारूप तैयार किया है गुजरातके रहनेवाले और बेंगलूरुमें सेवारत श्रीमौलिक सूचकजीने। पुस्तकका मुद्रण कानपुरनिवासी श्रीअजय वर्माके **नीलम मुद्रणालय**में हुआ है, जहाँसे पिछले वर्ष गुरुदेव कृत श्रीहनुमानचालीसाकी **महावीरी व्याख्या** छपी थी।

प्रस्तुत संस्करणमें भक्तमालका मूलपाठ संपादकोंने यथामति भिन्न-भिन्न संस्करणोंके आधारपर लिया है। भक्तमालका कोई प्रामाणिक संस्करण हमें इस समयमें उपलब्ध न हो पाया, और हमारे द्वारा संदर्भित संस्करणोंमें कुछ स्थानोंपर पाठभेद हैं। फलस्वरूप पाठकोंको कुछ स्थलोंपर प्रचलित प्रति से पाठभेद मिल सकता है। भक्तमालपर सुविशाल **भक्तिकृपाभाष्य** गुरुदेवका संकल्प है, और हमारी आशा है कि गुरुदेव द्वारा भक्तिकृपाभाष्यके प्रणयनके साथ-साथ भक्तमालके प्रामाणिक पाठका संपादन भी होगा।

संभव है प्रस्तुत संस्करणमें संपादकीय त्रुटियाँ रह गईं हों। यदि ऐसा हुआ है तो पाठक भक्त उन्हें

हम अल्पज्ञ संपादकोंके मानवजन्य भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटवका परिणाम समझकर हमें क्षमा करें और शीघ्रातिशीघ्र वैद्युत पत्राचार (e-mail) द्वारा namoraghavay@gmail.com पतेपर सूचित करें ताकि पुस्तकके अन्तर्जाल संस्करण (online edition) और आगामी मुद्रित संस्करणोंमें उनका निवारण हो सके।

हम गुरुदेवकी इस मनोहारिणी टीकाको भक्तों और पाठकोंको विनीत भावसे समर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि –

**गायं गायं भक्तमालं सरागं पाठं पाठं रामभद्रार्यटीकाम्।**
**स्मारं स्मारं भक्तपादाब्जधूलिं जीवा लोके भूरिभाग्या भवन्तु॥**

इति निवेदयन्ति
भक्तानां वशंवदाः
डॉ. रामाधार शर्मा
नित्यानन्द मिश्र
मनीषकुमार शुक्ल

मकर संक्रान्ति
विक्रम संवत् २०७०

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# प्राक्कथन

**श्रीमद्ब्रह्मसमारम्भां सम्प्रदायार्यमध्यमाम्।**
**श्रीलालमतीपर्यन्तां वन्दे भक्तपरम्पराम्॥**

श्रीअग्रदास(अग्रदेवाचार्यजी)के सुयोग्य, भगवत्साक्षात्कारी, अन्तस्तलपर्यन्त प्रवेश करने वाले श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजीकृत श्रीभक्तमालको आज कौन नहीं जानता? अपितु ये कहें तो कोई अतिरञ्जना नहीं होगी कि श्रीरामचरितमानसके पश्चात् यदि हिन्दी साहित्यमें किसीको भाषा-सौष्ठव, काव्य-चातुरी, संप्रेषणशीलता एवं भगवद्गुणगानके नैपुण्यका विरुद प्राप्त है तो वे हैं १००८ श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजी महाराज कृत श्रीभक्तमालजी। यहाँ यह भी कहना असाम्प्रतिक नहीं होगा कि गोस्वामी तुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानसजीके प्राकट्यके पश्चात् तत्काल ही श्रीभक्तमालजीका आविर्भाव हो चुका था। श्रीभक्तमालके सुमेरुके रूपमें गोस्वामी तुलसीदासजीको ही नाभाजीने अपने श्रीभक्तमालमें प्रतिष्ठापित किया और यह भी स्पष्ट किया कि उनके श्रीभक्तमालकी रचनाके पूर्व ही श्रीरामचरितमानसजीका प्रणयन हो चुका था। इसलिये वे कहते हैं –

**त्रेता काव्य निबंध करी सत कोटि रामायन।**
**इक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि पलायन॥**
**अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।**
**रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी॥**
**संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।**
**कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो॥**

(भ.मा. १२९)

यहाँ प्रयुक्त चार भूतकालिक क्रियाओंको देखकर – **त्रेताकाव्य निबंध करी**, **बहुरि लीला विस्तारी**, **सुगमरूप नौका लयो** और **बाल्मीकि तुलसी भयो** – यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीभक्तमालकी रचनाके पूर्व ही श्रीरामचरितमानसजीका गोस्वामीजीके माध्यमसे आविर्भाव हो चुका

था। और क्योंकि नाभाजीको गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी, इससे भी यह निश्चय हो जाता है कि श्रीभक्तमालजीकी रचना–प्रकृति श्रीरामचरितमानसजीकी रचना–धर्मितासे बहुत हिस्सोंमें मिलती जुलती है। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी अवधी भाषामें रचना करते हुए भी गँवारू अवधी भाषाके प्रयोगके पक्षमें नहीं दिखते, उनकी अवधी भाषा प्राञ्जल, सुसंस्कृत और बहुत परिष्कृत होती है, गोस्वामीजी जायसी की तरह असभ्य शब्दोंका प्रयोग कभी नहीं करते। ठीक उसी प्रकारका स्वभाव श्रीभक्तमालजीके रचनाकार नाभाजीका है। संतोंके नाम, जैसे गाँवमें कहे गए, उनको वैसे ही लिखनेमें वे किसी प्रकार हिचकिचाते नहीं हैं, परन्तु उनके गुणोंके प्रस्तुतीकरणमें गोस्वामीजीकी ही भाँति श्रीनाभाजी भी विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दोंका प्रयोग करते हुए दिखते हैं। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी कहीं–कहीं संस्कृत शब्दावलीके प्रयोगमें संकोच नहीं करते, उदाहरणतः –

**हरि अवतार हेतु जेहिं होई। इदमित्थं कही जात न सोई॥**

(मा. १.१२१.२)

यहाँ **इदमित्थं** शब्दका प्रयोग कितना सुन्दर लग रहा है। इसी क्रममें, मानस अयोध्याकाण्डके २२५वें दोहेमें गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दीके प्रयोगोंके साथ संस्कृतका सप्तमी बहुवचनान्त प्रयोग करके भी रसभङ्ग नहीं प्रत्युत रसरङ्ग करते हुए दिख रहे हैं –

**भरतप्रेम तेहिं समय जस तस कहि सकइ न शेषु।**
**कबिहिं अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु॥**

(मा. २.१२५)

यहाँ **जनेषु** शब्द काव्यमें रसभङ्ग नहीं कर रहा है। इसी क्रममें युद्धकाण्डके दोहा क्रमाङ्क १०४के छन्दमें –

**आजन्मते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयम्।**
**तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्॥**

(मा. ६.१०४.१३)

यहाँ **नमामि**, **ब्रह्म**, **निरामयम्** – ये तीनों संस्कृत शब्द कितने रुचिकर लग रहे हैं। आगे युद्धकाण्डके ही १०७वें दोहेके छन्दमें गोस्वामीजी कितने सुन्दर संस्कृत शब्द **किमपि**का प्रयोग कर रहे हैं – **का देउँ तोहि त्रैलोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा** (मा. ६.१०७.९)। और आगे चलते हैं – **रनजीति रिपुदल बन्धुजुत पश्यामि राममनामयम्** (मा. ६.१०७.९)। यहाँपर

**पश्यामि**, **रामम्**, **अनामयम्** – ये तीनों शब्द संस्कृतके हैं पर उनसे यहाँ रसभङ्ग नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गोस्वामीजीके पर:शत संस्कृत प्रयोग हिन्दी प्रयोगोंके साथ रह कर भी काव्यमें न तो रसभङ्ग कर रहे हैं और न ही अनौचित्य। ठीक इसी प्रकारकी प्रकृति श्रीभक्तमालकारकी भी है। वे भी यथावसर संस्कृत प्रयोगोंको श्रीभक्तमालमें स्थान देते हुए संकोचका अनुभव नहीं करते। जैसे पैंतीसवें पदमें जब रामानन्दाचार्यकी पद्धति-परम्पराको प्रस्तुत कर रहे हैं, तब नाभाजी कहते हैं – **तस्य राघवानंद भये भक्तनको मानंद** (भ.मा. ३५)। यहाँ **तस्य** शब्द कितना सुन्दर और कितना रुचिकर लग रहा है। इसी क्रममें आगे जब संतोंके गुणोंका परिचय प्रस्तुत करते हैं तो वे संस्कृत-समासनिष्ठ शब्दोंके प्रयोगोंमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं करते। जैसे उनका छिहत्तरवाँ पद द्रष्टव्य है –

**श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मनमोद घन॥**
**मधुरभाव रस मिलित ललित लीला सुवलित छवि।**
**निरखत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कवि॥**
**भव निस्तारन हेतु देत दृढ भक्ति सबनि नित।**
**जासु सुजस ससि उदय हरत अति तम भ्रम श्रम चित॥**
**आनंदकंद श्रीनंदसुत श्रीवृषभानुसुता भजन।**
**श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मनमोद घन॥**

(भ.मा. ७६)

एवंविध शताधिक संस्कृत प्रयोग श्रीभक्तमालमें उपस्थित होकर उसकी रचनाधर्मितामें चार-चाँद लगा देते हैं। श्रीभक्तमालकी भाषा **काव्यभाषा** है, जो भक्तिकालमें प्रसिद्ध थी। यहाँ काव्यभाषा कहनेका मेरा तात्पर्य यह है कि भक्तिकालमें भक्त-कवियोंने एक ऐसी काव्यभाषाका निर्माण किया था, जो अवधी और ब्रज दोनोंका मिश्रण थी। वह न तो केवल अवधी थी और न केवल ब्रज। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि जो जिस क्षेत्रमें उत्पन्न हुआ उस क्षेत्रकी भाषाका उसपर उतना अधिक प्रभाव पड़ा, यद्यपि सबकी काव्यभाषा एक ही थी। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीकी भाषा यही थी जो नाभाजीकी है, परन्तु अन्तर यह है कि गोस्वामीजी बुन्देलखण्डी वातावरणमें अधिक रहे और उनका अवधीसे बहुत संबन्ध था, इसलिये उनकी भाषा काव्यभाषा होकर भी अवधीप्रधान हुई और अवधीमें भी बुन्देलखण्डके शब्द गोस्वामीजीकी रचनामें अधिकतर आये, जैसे **करिहउँ** (मा. २.६७.२ आदि), **जैहउँ** (मा. १.५९.१, ६.६१.११), **लैहउँ** (मा. १.१८७.२), **तहूँ बंधु सम बाम** (मा. १.२८२),

**महूँ** (मा. २.२६० आदि), **छुहे पुरट घट सहज सुहाए** (मा. १.३४६.६) इत्यादि। ठीक उसी प्रकार नाभाजी राजस्थानमें जन्मे और ब्रजकी परम्परासे उनका बहुत अधिक संबन्ध रहा। इससे उनकी काव्यभाषामें ब्रजभाषा और राजस्थानीका अधिक प्रभाव पड़ गया। परन्तु इससे यह नहीं कहना चाहिए कि उन्होंने काव्यभाषाको छोड़ा। हाँ, शब्दोंका प्रयोग प्रत्येक कविकी अपनी आन्तरिक भाषाके साम्पर्किक वातावरणका धर्म बन जाता है। इसीलिये जहाँ गोस्वामीजी **खींचने**के अर्थमें बुन्देलीशब्द **खैंच**का प्रयोग करते हैं, वहीं नाभाजी **ऐंच** शब्दका प्रयोग करते हैं। उदाहरणतःगोस्वामीजी कहते हैं – **खैंचि धनुष शर शत संधाने** (मा. ६.७०.७) और **खैंचि शरासन छाड़े सायक** (मा. ६.९२.६), वहीं नाभाजी कहते हैं – **बिमुखनको दियो दण्ड ऐंचि सन्मारग आने** (भ.मा. ४२) और **ऐसे लोग अनेक ऐंचि सन्मारग आने** (भ.मा. १७३)। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए। श्रीभक्तमालका भाषा-धर्म श्रीरामचरितमानसकी ही भाँति सुसंस्कृत और परिष्कृत है। नाभाजीकी शैली भी गोस्वामी तुलसीदासजी जैसी ही है। इसीलिये तो दोनोंकी बहुत पटती होगी, तभी तो श्रीभक्तमालकारने अपनी श्रीभक्तमालमें तुलसीदासजीको सुमेरुके रूपमें प्रतिष्ठापित किया है।

श्रीभक्तमाल संत-साहित्यका सर्वप्रथम और अप्रतिम संस्करण है। इसमें नाभाजीने चारों युगोंके भक्तोंकी न्यूनाधिक चर्चाकी है। श्रीभक्तमालके प्रथम चार दोहे मङ्गलाचरण और रचना-प्रयोजनके हेतु प्रस्तुत किये गए हैं। पाँचवें पदसे भक्तोंकी चर्चाका प्रारम्भ होता है। श्रीभक्तमालके पदोंकी कुल संख्या २१४ है। इनमें चार दोहे प्रारम्भमें (पद १से ४), एक दोहा बीचमें (पद २९), और बारह दोहे (पद २०३से २१४) अन्तमें हैं। अर्थात् उपक्रममें चार दोहे, अभ्यासमें एक दोहा, और उपसंहारमें बारह दोहे हैं। कुल मिलाकर सत्रह दोहे और एक कुण्डलिया (पद १८५) है, और शेष सभी छप्पय हैं। उपसंहारमें ही तीन छप्पय (पद २००से २०२) भी हैं। इस प्रकार उपक्रम और उपसंहारको छोड़कर पाँचवें पदसे पद संख्या १९९ पर्यन्त नाभाजीने भक्तोंका यशोगान किया है। उन्होंने २४ अवतारों और भगवान् श्रीरामके २४ चरणचिह्नोंका स्मरण करके मूल रूपसे सातवें पदसे भक्तोंके यशोगानको अपना वर्णनीय विषय बनाया। सातवें पदमें **ब्रह्माजी**से प्रारम्भ किया और १९९वें पदमें परमभागवती **श्रीलालमती माताजी**के यशोगानपर श्रीभक्तमालको विश्राम दिया।

इस वर्णन पद्धतिको देखकर ऐसा लगता है कि नाभाजीके मनमें वर्तमान भारतका स्वरूप और उसकी विघटन-परम्परा तथा उसकी दुर्व्यवस्थाका ताण्डव प्रतिबिम्बित हो रहा होगा। उनको यह भली-भाँति संज्ञान रहा ही होगा कि भारत धीरे-धीरे अपनी परम्पराओंसे दूर हटता जा रहा है। नाना

प्रकारकी विघटनकारी शक्तियाँ भारतीय व्यवस्थाको निर्बल बनाती जा रही हैं। नाभाजीका चिन्तन भारतके प्रति उसी प्रकारसे संवेदनात्मक था जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी का। और इसीलिये मैं यह कहनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं कर रहा हूँ कि गोस्वामी तुलसीदासजीकी भाँति ही श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजीकी रचना–धर्मिता पूर्णतः क्रान्तिकारिणी और देशके दिशा–परिवर्तनकी एक आक्रामक पद्धति थी। हुआ भी वही। देशमें नाना प्रकारके भेदभावोंकी चर्चा चल रही थी। छुआछूत, अपने–अपने वर्णाश्रमोंके नियमोंके प्रति निरर्थक आग्रह इत्यादि हिन्दू शक्तियोंका विघटन करनेमें लगे थे। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामानन्दाचार्यजीकी पद्धतिका अनुसरण किया और जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्यकी भाँति ही उन्होंने भगवत्प्रपत्तिमें अर्थात् श्रीरामकी शरणागतिमें सबको अधिकार दिया और भुशुण्डिजीसे यहाँ तक कहलवा दिया कि –

**पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।**
**सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥**

(मा. ७.८७क)

अर्थात् भगवानके भजनमें प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रमधर्मीको अधिकार है। बार–बार गोस्वामीजी ये कहते हुए दृष्टिगोचर होते हैं कि –

**कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥**
**राम कीन्ह आपन जबही ते। भयउँ भुवन भूषन तबही ते॥**

(मा. २.१९६.१–२)

ठीक इसी मन्त्रका शङ्खनाद कर रहे हैं गोस्वामीजीके ही परम स्नेहपात्र श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजी। इसीलिये तो उन्होंने प्रारम्भ किया ब्रह्माजीसे और विश्राम दिया लालमती माताजीके यशोगान पर। इसका तात्पर्य है कि भगवान्‌की भक्तिमें सभी एक पङ्क्तिमें बैठते हैं। ब्रह्माजी जैसे सृष्टिकर्ता, जो वेदोंके प्रथम ज्ञाता और ॐकारके प्रथम उद्गाता भी हैं, और लालमतीजी जैसी एक अनपढ़ महिला भी। ब्रह्माजीके चरित्रमें तो नाभाजी केवल नामसंकीर्तन करते हैं, यथा **विधि नारद शंकर सनकादिक कपिलदेव मनुभूप** (भ.मा. ७), केवल बीज शब्दसे नामसंकीर्तन ही उन्होंने पर्याप्त माना। परन्तु जब लालमती माताजीका चरित्र लिखने लगे तो नाभाजी कितने भावुक हो उठे कि उनकी भावदशा द्रष्टव्य है। अपने विश्राम वर्णन छप्पयमें नाभाजी कहते हैं –

**दुर्लभ मानुषदेहको लालमती लाहो लियो॥**
**गौरस्यामसों प्रीति प्रीति यमुनाकुंजनसों।**
**बंसीबटसों प्रीति प्रीति ब्रज रजपुंजनसों॥**
**गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह बनसों।**
**पुर मथुरासों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्धनसों॥**
**बास अटल बृंदा विपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो।**
**दुर्लभ मानुषदेहको लालमती लाहो लियो॥**

(भ.मा. १९९)

बड़े-बड़े भक्तोंकी चर्चा करनेके पश्चात् भी गोस्वामी नाभाजीको विश्राम-चर्चाके लिये एक नारी पात्र मिला। एक ओर जहाँ शङ्कराचार्य जैसे आचार्यने नारीको नरकका द्वार माना और कहा – **द्वारं किमेकं नरकस्य नारी**, वहीं तुलसीदासजी महाराजने और नाभाजी महाराजने नारीको नारायणी मानते हुए अपने वर्ण्य-विषयका विश्राम पात्र माना। नाभाजीने खुल कर कहा कि अरे! देव-दुर्लभ मनुष्य शरीरका तो लाभ लालमती माताजीने लिया। क्या व्यक्तित्व था इस महिला का! गौरश्याम श्रीराधाकृष्णसे प्रीति, पुनः उनकी स्नानविहारस्थली यमुनाकुञ्जोंसे प्रीति, पुनः उनकी विनोदस्थली वंशीवटसे प्रीति, उनकी रमणस्थली ब्रजरजके पुञ्जोंसे प्रीति, श्रीराधाकृष्णकी जन्मस्थली गोकुल-बरसाना और गुरुजनोंसे प्रीति, श्रीराधाकृष्णकी विहारस्थली व्रजके बारह वनोंसे प्रीति, मथुरा एवं गिरि-गोवर्धनसे प्रीति।

मेरे कथ्यका तात्पर्य इतना ही है कि उस समय जिस रूढ़िवादी परम्पराने भारतको निर्बल करनेकी ठान ली थी, नाभाजी महाराजने उसका विरोध करके एक विशाल और सुसंस्कृत तथा सशक्त भारतके निर्माणकी कल्पना की। इसीलिये चारों वर्णोंकी चर्चा करते हुए भी और सबके प्रति भक्तिकी उदारताकी घोषणा करते हुए भी नाभाजीने अपने वर्णनमें उन बहुसंख्यक भक्तों की चर्चाकी जो चतुर्थ वर्णके हैं, और जो भगवद्भजनमें मत्त होकर विधि-निषेधसे परे हो चुके हैं तथा जिनको श्रीरामकृष्णके अतिरिक्त कुछ भी न तो ज्ञातव्य है और न ही ध्यातव्य है। इसलिये जहाँ तक श्रीभक्तमालका मैंने अध्ययन किया है, उस अध्ययनसे यह स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि श्रीभक्तमाल केवल कतिपय संसारके व्यवहारसे अतीत भक्तोंके ही आत्मरञ्जनका साधन नहीं है, प्रत्युत श्रीभक्तमाल उन संपूर्ण महानुभावोंका पाथेय है जो इस भारतको एक अखण्ड, सार्वभौम, सत्तासम्पन्न और सशक्त राष्ट्रके रूपमें देखना चाहते हैं।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि श्रीभक्तमालमें भगवान्को तीन रूपोंमें देखा गया है –

श्रीरामरूपमें, श्रीकृष्णरूपमें और श्रीनारायणरूप में। श्रीभक्तमालके रचयिता गोस्वामी नारायणदास नाभाजी श्रीरामानन्दी वैष्णव परम्पराके संत हैं, इसमें कोई संदेह नहीं, और उनकी गुरु-परम्परा भक्तमालमें बहुत ही स्पष्ट है। जैसे पद संख्या ३६में जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्यजीके प्रथम शिष्य अनन्तानन्दजी हैं, **यथा अनंतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावती नरहरी** (भ.मा. ३६)। और अनन्तानन्दजी महाराजके पञ्चम शिष्यके रूपमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज प्रस्तुत किये गए हैं, यथा पद संख्या ३७में – **योगानंद गयेस करमचंद अल्ह पैहारी** (भ.मा. ३७)। और उन पयहारीजी महाराजके द्वितीय शिष्य हैं श्रीअग्रदासजी महाराज, यथा पदसंख्या ३९में नाभाजी कहते हैं – **कील्ह अगर केवल्ल चरण ब्रतहठी नारायन** (भ.मा. ३९)। और उन्हीं अग्रदासजीके सुयोग्यतम शिष्य हैं श्रीनारायणदास नाभाजी महाराज। वे स्वयं मङ्गलाचरणमें ही चतुर्थ दोहेमें कहते हैं –

**( श्री )अग्रदेव आज्ञा दई भक्तनको जस गाउ।**
**भवसागरके तरनको नाहिंन और उपाउ॥**

(भ.मा. ४)

और विश्राम दोहेमें स्वयं नाभाजी कहते हैं कि –

**काहूके बल जोग जग कुल करनीकी आस।**
**भक्त नाममाला अगर उर बसौ नरायनदास॥**

(भ.मा. २१४)

इससे यह निश्चित हो जाता है कि नाभाजी अर्थात् गोस्वामी नारायणदासजी महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र हैं। वे अग्रदासजी कृष्णदास पयहारीजी महाराजके कृपापात्र हैं। निष्कर्षतः नाभाजी जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्यजीके प्रशिष्य पयहारी श्रीकृष्णदासजीके प्रशिष्य हैं। अतः यह तो स्वाभाविक है कि नाभाजीके मस्तिष्कमें श्रीरामोपासनाका प्रभाव है, और रहना भी चाहिए। इसीलिये छठे पदमें नाभाजीने भगवान् रामके ही चरण-चिह्नोंके ध्यानकी बातकी, यथा **चरन चिन्ह रघुबीरके संतन सदा सहायका** (भ.मा. ६)। परन्तु वर्णनमें उनके मनमें कोई पक्षपात नहीं और वे प्रत्येक भक्तको समान देखते हैं, भगवान्का भक्त कोई भी हो – चाहे वह रामोपासन परम्पराका हो या कृष्णोपासन परम्पराका हो या नारायणोपासन परम्पराका हो। और इसी उदारताको भारतके भाग्यके एक क्रान्तिकारी संतकी मूलनिधि समझना चाहिये, जो जितनी पहले प्रासंगिक नहीं रही होगी उससे अधिक आज प्रासंगिक है। इसलिये मैंने यह कहा है कि श्रीनाभाजीके वर्ण्यविषयमें चतुर्थ वर्णके भक्त अधिक दिखते हैं। वे जहाँ

**अनंतानंद पदपरसके लोकपाल सेते भये** (भ.मा. ३७) कहकर ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न एक भक्तका यशोगान करते हैं, वहीं बारम्बार नामदेव, रैदास, कबीरदास आदिका भी वर्णन करते हैं – **नामदेव प्रतिज्ञा निर्वही ज्यों त्रेता नरहरिदासकी** (भ.मा. ४३), **संदेह ग्रंथ खंडन निपुन बानि बिमल रैदासकी** (भ.मा. ४३), **कबीर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षट्दरसनी** (भ.मा. ६०)। किं बहुना रैदासजीकी परम्परामें विट्ठलदास रैदासीकी चर्चा करनेमें भी नाभाजीको संकोच नहीं होता, वे कहते हैं – **बिठलदास हरिभक्तिके दुहूँ हाथ लाडू लिया** (भ.मा. १७७)। जब महिला भक्तोंकी चर्चा करनी पड़ती है तब वे प्रायशः चतुर्थ वर्णकी ही महिलाओंकी चर्चा करते हैं, क्योंकि लगता यही है कि उच्च वर्णके लोगोंमें वर्णाश्रमका अभिमान होनेसे कदाचित् नाभाजीको भक्तिकी विरलता दिखती होगी। क्योंकि चतुर्थ वर्णके भक्तोंमें समाजसे पददलित होनेपर वर्णाश्रमका अभिमान तो सम्भव नहीं, अतः वहाँ भक्ति खुलकर सम्मुख आ जाती है। इसलिये तो नाभाजी कहते हैं – **ध्रुव गज पुनि प्रह्लाद राम सबरी फल साखी** (भ.मा. २०२)। नाभाजीने शबरी और कर्माबाईकी चर्चा करते समय क्या भावुकताका प्रस्तुतीकरण किया है – **हनुमंत जामवंत सुग्रीव बिभीषन सबरी खगपति** (भ.मा. ९) और इधर कर्माबाईकी चर्चा करते हुई पचासवें पदमें नाभाजी कहते हैं – **छपन भोगतें पहिल खीच करमा की भावे** (भ.मा. ५०)। महिलाओंकी चर्चा जब करनी होती है तो –

**खीचनि केसी धना गोमती भक्त उपासिनि।**
**बादररानी बिदित गंग जमुना रैदासिनि॥**

(भ.मा. १७०)

जहाँ तक मेरी अवधारणाकी बात है, मैं यह स्पष्ट कहने जा रहा हूँ कि भारतको विशाल और समृद्ध तथा सशक्त देखनेकी जो परिकल्पना गोस्वामीजीके मनमें है उसीसे मिलती-जुलती परिकल्पना नाभाजीकी भी है। अतः श्रीभक्तमालको गोस्वामीजीके विचारोंके पूरकरूपमें स्वीकारना चाहिए। और आजके समयके सन्दर्भोंमें उसी दृष्टिसे श्रीभक्तमालपर विचार भी करना चाहिए।

अब आई बात श्रीभक्तमालके व्याख्यानोंकी। तो श्रीभक्तमालके प्रथम व्याख्याता भक्तमालीके रूपमें नाभाजीने स्वयं अपने सुयोग्यतम कृपापात्र शिष्य गोविन्ददासका स्मरण किया, उन्हींको श्रीभक्तमालवाचनका अधिकार देकर उन्हें सर्वप्रथम भक्तमाली बनाया, और १९२वें पदमें कह दिया कि **भक्तरतनमाला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय** (भ.मा. १९२)। इसके पश्चात् श्रीभक्तमालकारकी परमपद-प्राप्तिके लगभग १०० वर्षोंके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दीमें गौडमध्वेश्वर-

संप्रदायानुगामी मनोहरदासजीके कृपापात्र श्रीप्रियादासजीके मनमें भगवदीय प्रेरणा हुयी। उन्होंने श्रीभक्तमालपर कवित्तमें **भक्तिरसबोधिनी** टीका लिखी। उससे बहुत लाभ हुआ क्योंकि ऐसे गुप्त चरित्र जो नाभाजीके छप्पयमें नाममात्रके लिये आये हैं, उनका पल्लवन हुआ, और श्रीभक्तमालके वक्ताओंको कथा कहनेका अच्छा अवसर मिला। श्रोताओंको भी श्रीभक्तमालको सुननेका अवसर मिला और उनकी रुचिका संवर्धन भी हुआ। परन्तु चूँकि प्रियादासजीकी बुद्धिने कवित्तबद्ध टीका करनेका संकल्प किया और उस समयकी और आजकी परिस्थितियोंमें इतना अन्तर आ चुका है कि जिसका कदाचित् प्रियादासजीके मनमें आभास नहीं रहा होगा। वे तो सबको अपने स्तरसे समझ रहे होंगे कि सबको समझमें आ रहा है। पर उस टीकासे मूलके अर्थको समझानेमें उतनी कृतकार्यताका अनुभव नहीं देखा गया। मूलका अर्थ तो ज्यों-का-त्यों रहा, उसे तो गद्यमें समझाना होगा। इसके पश्चात् रामसनेही संप्रदायानुगत रामसनेही महाराजने **भक्तिदामगुणचित्रिणी** टीका लिखी, वह भी पद्यमें है। उससे भी मूलार्थ तो बेचारा ज्यों-का-त्यों छूट ही गया। न किसीने उसे समझाया और न किसीने उसे समझा। क्योंकि किसी भी रचनाके मूलार्थको समझनेके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना ही पड़ेगा। यदि रचना पद्यमें है और उसकी टीका भी यदि पद्यमें कर दी जाएगी तो मूलका अर्थ कैसे समझमें आएगा? अर्थ समझनेके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना पड़ेगा। इसीलिये **वाल्मीकीय रामायण** और **श्रीमद्भागवत**के टीकाकार तो संस्कृतके विद्वान् थे, तो क्या वे पद्यमें नहीं लिख सकते थे? वे जानते थे कि पद्यसे मूलार्थ कभी भी स्पष्ट नहीं हो सकता। उसके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना पड़ेगा क्योंकि पद्य किसीके लिये भी व्यवहारिक नहीं हो सकता। व्यावहारिक भाषामें तो गद्य ही सहायक होता है और भाषा निरन्तर गद्यमें बोली जाती है, पद्यमें नहीं। पद्य बोलनेकी भाषा नहीं, लिखनेकी भाषा है। इसलिये वाल्मीकीय रामायणके टीकाकार या भागवतजीके टीकाकार और अन्य ग्रन्थोंके भी टीकाकार पद्यमें लिखे हुए ग्रन्थोंकी गद्यमें ही तो टीका किये। श्रीधराचार्यसे प्रारम्भ करके भागवतकी आज लगभग ३७ टीकाएँ प्राप्त हैं, वे गद्यमें ही तो हैं। वाल्मीकीय रामायणकी भी लगभग १५ टीकाएँ जो प्राप्त हैं वे भी गद्यमें हैं, पद्यमें नहीं। यहाँ तक कि वाल्मीकीय रामायणकी सर्वप्रथम टीका धर्मराज युधिष्ठिरजीके अनुरोधपर वेदव्यासने **तात्पर्यदीपिका** नामसे प्रस्तुतकी वह भी गद्यमें है, आज दुर्भाग्यसे वह उपलब्ध नहीं है। उसके संस्मरण हमने गीताप्रेसकी भूमिकामें देखे। तो यदि वेदव्यास वाल्मीकीय रामायणकी टीका गद्यमें कर सकते हैं, जबकि वे तो पद्य लिखनेमें समर्थ थे – उन्होंने पुराण और महाभारत मिलाकर पाँच लाख श्लोकोंकी रचना की जो सब पद्यमें है – तब इससे

यह समझनेमें किसीको भी संशय नहीं होना चाहिए कि मूलार्थ समझानेके लिये गद्य ही अपेक्षित होता है, न कि पद्य। इसलिये वेदोंके भाष्य भी गद्यमें लिखे गए। अन्य पद्यमें लिखे गए बृहत्त्रयी, लघुत्रयीकी टीकाएँ भी गद्यमें उपलब्ध होती हैं न कि पद्य में। क्योंकि व्यवहारमें भातसे भात नहीं खाया जा सकता, भातको तो दालमें ही मिलाके खाना पड़ेगा। इसलिये प्रियादासजीकी टीका **भक्तिरसबोधिनी** और रामसनेहीदासजीकी टीका **भक्तिदामगुणचित्रिणी**में संतोंके चरित्रोंको तो स्पष्ट किया, पर नाभाजीने मूलमें क्या कहा इसका अभिप्राय समझमें नहीं आया, और न तो उन्होंने समझाया। श्रीवैष्णवदास महाराजने श्रीभक्तमालका माहात्म्य लिखा। इसके पश्चात् धीरे-धीरे श्रीभक्तमालकी कथाका प्रारम्भ हुआ जिससे मूलार्थके स्पष्टीकरणकी बहुत चेष्टा की गई। बीसवीं शताब्दीमें श्रीवृन्दावनमें जगन्नाथप्रसादी भक्तमालीजीका जब प्रादुर्भाव हुआ तो उनके व्याख्यानसे श्रीभक्तमालका बहुत प्रचार-प्रसार हुआ, और बहुशः लोगोंका मन मूलार्थके समझनेमें गया। फिर बीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मेरे अत्यन्त स्नेही मित्र श्रीगणेशदासजी भक्तमालीजीने एक **भक्तिवल्लभा** नामक टिप्पणी लिखी। उसमें कुछ मूलार्थ समझानेका प्रयास किया गया। क्योंकि टिप्पणीका आकार छोटा था, अतः उतना लाभ नहीं हो सका जितना अपेक्षित था। और श्रीभक्तमालकी जो मुद्रित पुस्तकें मिलीं वे भी प्रियादासजीकी टीकाके साथ मिलीं।

सर्वप्रथम अपने विद्यार्थी-जीवनके पश्चात् जब मैंने श्रीवाल्मीकीय रामायण और भागवतकी कथाके वाचनक्षेत्रमें प्रवेश किया तो क्योंकि मेरा स्वभाव अनुसन्धानात्मक था, मैं स्वयं अनुसन्धाता था, अनुसन्धित्सा मेरी अपनी एक पद्धति और विचारसरणि थी, तो मेरे मनमें विचार आया कि क्या श्रीभक्तमालजीका स्वतन्त्र मूल कहीं मिल जाएगा जो इस टीकासे अलग हो। १९७८में मैंने श्रीवृन्दावन जाकर उस समय सुदामाकुटीमें विराज रहे श्रीरामेश्वरदासजीसे चर्चा की। वे उस समय मुझे नहीं जानते थे। मेरी वेषभूषाको देखकर वे मुझे विद्यार्थी मान रहे थे। मैंने पूछा कि क्या श्रीभक्तमालका मूल ग्रन्थ उपलब्ध हो जाएगा? तो उन्होंने कहा – "अरे बाबा! टीकाके साथ ही मिलता है।" और उन्होंने विनोदमें मेरे साथ गए हुए एक संतसे कहा – "अरे! ये तो विद्वान्, तुम साधु। तुम्हारा इनसे कैसे संपर्क हो गया?" और आगे कहा **नर बानरहि संग कहु कैसे** (मा. ५.१३.११)। यद्यपि उस वाक्यने मेरे मनको आन्दोलित किया और मुझे लगा कि मेरे स्वाभिमानपर इनका प्रहार है, पर मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। उसी समय मैंने संकल्प ले लिया कि अब श्रीभक्तमालपर प्रवचन करके महाराजजीके **नर बानरहिं संग कहु कैसे** (मा. ५.१३.११) इस वाक्यका अवश्य उत्तर दूँगा।

संयोगसे धीरे-धीरे मेरे वक्तव्योंको संत-समाजने, वैष्णव-समाजने, और सभी गृहस्थ नर-नारियोंने बहुशः स्वीकारा, प्रशंसित किया और कालान्तरमें जाकर जब मैं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पदपर अभिषिक्त हुआ और उस परम्पराकी सेवा करते हुए मैंने २५ वर्ष संपन्न कर लिये, तब मेरे मनमें आया कि जैसे मैंने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य रचकर संप्रदायकी सेवाकी है, जिस प्रकार श्रीरामचरितमानसजीपर भावार्थबोधिनी टीका लिखकर श्रीरामचरितमानसके बहुत-से गूढ़ प्रसंगोंको पुस्तकनिबद्ध करके सेवाकी, उसी प्रकार मुझको अब श्रीभक्तमालकी भी सेवा करनी चाहिए क्योंकि यह श्रीरामानन्दी संप्रदायकी बहुत बड़ी निधि है। अद्वितीय नहीं तो द्वितीय निधि कहना चाहिए। यदि श्रीरामचरितमानस अद्वितीय निधि है तो श्रीभक्तमाल भी श्रीरामानन्दी संप्रदायकी द्वितीय निधि है। इस संकल्पको साकार करनेके लिये फिर मैंने पहला कार्य यह किया कि श्रीभक्तमालजीको अक्षरशः कण्ठस्थ किया, और लगभग उसके शताधिक पाठ किये। फिर मेरे मनमें यह संकल्प जगा कि अब श्रीभक्तमालकी एक संक्षिप्त टीका लिखनी चाहिए जो मूलके अर्थको कह रही हो। दैवयोगसे श्रीभक्तमालके व्याख्यानके लिये मेरी १३ जनवरीसे १९ जनवरी २०१४ पर्यन्त कथा भी निश्चित की गयी, उसका संस्कार चैनलके माध्यमसे जीवंत प्रसारण भी निश्चित हुआ और मेरे अनेकानेक परिकर भी मुझसे अनुरोध करने लगे कि जगद्गुरुजी! गाजियाबादकी श्रीभक्तमालकथामें सबको श्रीभक्तमालपर एक मूलार्थ समझाने वाली टीका उपलब्ध होनी चाहिए। मुझे धर्मसंकट था कि यह कार्य किया कैसे जाए। मेरे दीक्षित तीन सुयोग्य शिष्य मुझे उपलब्ध हुए। उन्होंने कहा कि यदि गुरुदेव शङ्कर रूप हैं तो हम उनके नेत्र बनेंगे। वे हैं पटनासे श्रीरामाधार शर्मा, लखनऊमें जन्मे और हॉङ्ग-कॉङ्गमें सेवारत श्रीनित्यानन्द मिश्र, और कानपुरमें जन्मे और बेंगलूरुमें सेवारत श्रीमनीष शुक्ल। अब क्या था। मेरे मनमें और रचना-धर्मिता प्रस्फुटित हुई और थोड़े ही दिनोंमें मैंने श्रीभक्तमालके मूलार्थपर **मूलार्थबोधिनी** नामक टीका प्रस्तुत कर दी। मुझे इस बातका हर्ष है कि इस टीकाकी परिकल्पना और रचनामें मुझे मेरी अग्रजा डॉ. कुमारी गीतादेवी मिश्रका बहुत सहयोग मिला। और मैं एक बालक परिकरको कभी विस्मृत नहीं कर पाऊँगा, जिन्होंने इसके विषयसंकलनमें तथा लेखन-वाचनमें मुझे बहुत सहयोग दिया, और भक्तमाल कण्ठस्थ करानेमें पूर्ण भूमिका निभाई। वे हैं मेरे निजी सहायक आयुष्मान् जय मिश्र। जब-जब भी वाचनकी मुझे आवश्यकता हुई, चाहे दिन हो या रात, किसी भी समय मैंने जय मिश्रको उठाया तो उन्होंने मेरी अपेक्षाओंकी पूर्ति की। मैं उनको बहुत-बहुत आशीर्वाद ज्ञापित करता हूँ। पश्चात् मुद्रणमें धनकी बात आयी – मैं तो स्वयं निष्किञ्चन ब्राह्मण और आचार्य। श्रीराम-कथाका संपूर्ण धन मैं विकलाङ्ग विश्वविद्यालयको ही दे दिया करता

हूँ इसलिये मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं। तब मेरी सुयोग्य शिष्या अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती सरला बियानी, जो वर्तमानमें अहमदाबादमें रह रही हैं, उन्होंने यह सेवा स्वीकार कर ली। मैं उनको बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हूँ।

अन्ततोगत्वा मैं प्रियादाससे लेकर आज तकके भक्तमालके सभी व्याख्याकारोंका बहुत-बहुत आभारी हूँ, जिनमें प्रियादासजी, रामसनेहीदासजी, श्रीभक्तमालके टिप्पणीकर्ता मित्र श्रीगणेशदासजी जिनका वर्तमानमें साकेतवास हो चुका है, श्रीभक्तमालकी बीसवीं शताब्दीके प्रसिद्ध व्याख्याकार श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमालीजी महाराज, और मेरे विद्यार्थी-कल्प श्रीरामकृपालदास महाराज चित्रकूटी जिन्होंने एक खण्डमें श्रीभक्तमालको छपाकर जनताको बहुत लाभ दिया। गतवर्ष ही गीताप्रेससे कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित भक्तमालाङ्कके संकलनकर्ता महानुभाव और मेरे ही विद्यार्थी-कल्प मेरे मित्र गणेशदासजीके कृपापात्र और श्रीभक्तमालके बड़े प्रामाणिक वक्ता श्रीमलूकपीठाधीश्वर राजेन्द्रदासजी और अन्यान्य वैष्णव तथा मेरे साकेतवासी गुरुभ्राता श्रीनारायणदासजी भक्तमाली, जो **मामाजी**के नामसे प्रसिद्ध थे और आज भी प्रसिद्ध हैं – इन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। मैं अपेक्षा करता हूँ कि यह मेरी मूलार्थबोधिनी टीका श्रीभक्तमालके मूलको समझानेमें बहुत कृतकार्य होगी। अन्तमें मैं एक बात कहकर इस प्राङ्निवेदनको विश्राम देना चाहूँगा –

**कोउ कहे भक्तमाल परम कठिन ग्रन्थ**
**कोउ कहे भक्तमाल पंडित पछार है।**
**कोउ कहे भक्तमाल सतत दुरूह वस्तु**
**कोउ कहे भक्तमाल पंडित जीवमार है।**
**कोउ कहे भक्तमाल संतनकी निधि दिव्य**
**कोउ कहे भक्तमाल पंडित फटकार है।**

परन्तु –

**जगद्गुरु रामानन्दाचार्य रामभद्राचार्य**
**कहें भक्तमाल भव्य पंडित शृंगार है।।**

क्योंकि जो पण्डित होगा वही श्रीभक्तमाल पढ़ेगा। पण्डितका अर्थ केवल शास्त्रार्थी पण्डितसे ही नहीं समझना चाहिए, पण्डित वही है जो भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम करता है। यथा –

**सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोई गुन गृह बिज्ञान अखंडित॥**
**दक्ष सकल लच्छन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई॥**

(मा. ७.४९.७–८)

मैं यह श्रीभक्तमालकी मूलार्थबोधिनी टीका अपने उपास्य, अपनी जिजीविषाके आधार और अपने जीवनके सर्वस्व वसिष्ठानन्दवर्धन श्रीराघवको ही समर्पित करता हूँ।

**त्वदीयं वस्तु भो राम तुभ्यमेव समर्पये।**
**गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद शिशुराघव॥**
**श्रीराघवः शं तनोतु।**

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# पूर्वार्ध

**भक्तान् भक्तिं रामभद्राचार्यो नत्वा हरिं गुरून्।**
**श्रीभक्तमाले कुरुते टीकां मूलार्थबोधिनीम्॥**
**जयति जगदघालं भग्नभक्ताधिजालं**
**हरिजनगुणमालं जुष्टराजत्तमालम्।**
**विभुविरुदविशालं प्रेमपीयूषपालं**
**हरिहृदयरसालं भास्वरं भक्तमालम्॥**
**प्रभू गौरश्यामौ विजितरतिकामौ तनुरुचा**
**विभू आत्मारामौ त्रिभुवनललामौ गुणनिधी।**
**जनारामौ रामौ प्रथितपरिणामौ सुखकरौ**
**स्तुवे सीतारामौ जनदृगभिरामौ गिरिधरः॥**

॥ १ ॥

**भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।**
**इनके पद बंदन किए नासहिं विघ्न अनेक॥**

**मूलार्थ** – **भक्त** अर्थात् भगवान्के श्रीचरणारविन्दके अनुरागी भक्तवृन्द, भगवान्की परमप्रेमारूपिणी **भक्ति**, स्वयं षडैश्वर्यसंपन्न श्रीरामश्रीकृष्णश्रीनारायणान्यतम **भगवान्**, और उनके तत्त्वका उपदेश करनेवाले **श्रीगुरुदेव** – ये चारों नाम और स्वरूपसे चार-चार दिखते हैं अर्थात् इनके पृथक्-पृथक् चार नाम हैं और पृथक्-पृथक् चार शरीर भी हैं। परन्तु वस्तुतः ये एक ही हैं, अर्थात् एक-दूसरेसे अभिन्न हैं, और एक परमेश्वर ही चार रूपोंमें हमें दिख रहे हैं। इनके श्रीचरणोंका वन्दन करनेसे अनेक विघ्न नष्ट हो जाते हैं। इसलिये मैं नारायणदास नाभा इन चारोंके श्रीचरणकमलोंका वन्दन कर रहा हूँ।

॥ २ ॥

**मंगल आदि बिचार रह बस्तु न और अनूप।**
**हरिजनको जस गावते हरिजन मंगलरूप॥**

**मूलार्थ** – श्रीनाभाजी कहते हैं कि श्रीहरि भगवान्‌के भक्तोंके यशको गाते समय जब आदिमङ्गलका विचार किया गया तो यह निष्कर्ष निकला कि भगवान्‌के भक्तोंकी अपेक्षा और कोई दूसरी वस्तु अनुपम अर्थात् उत्कृष्ट है ही नहीं। अर्थात् भगवान्‌के भक्त ही स्वयं अनुपम हैं, उनका यशोगान अनुपम है। इसलिये भगवद्भक्तोंके यशोगानके प्रारम्भमें किसी और मङ्गलकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवान्‌के भक्त स्वयं मङ्गलस्वरूप हैं।

॥ ३ ॥

**संतन निर्नय कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।**
**भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥**

**मूलार्थ** – संतोंने चारों वेदोंका, अठारहों पुराणोंका, एवं श्रीरामायण तथा श्रीमहाभारत – इन दोनों इतिहासोंका आलोडन करके यह निर्णय कर लिया है कि भजन करनेके लिये दोनों ही श्रेष्ठ हैं – या श्रीहरिका भजन किया जाए या श्रीहरिके दासोंका भजन किया जाए, वस्तुतस्तु दोनोंका ही भजन करना अनिवार्य है, क्योंकि भगवद्भक्तोंके भजनसे भगवान् प्रसन्न होंगे और भगवान्‌का भजन करनेसे भगवद्भक्त प्रसन्न होंगे।

॥ ४ ॥

**( श्री )अग्रदेव आज्ञा दई भक्तनको जस गाउ।**
**भवसागरके तरनको नाहिन और उपाउ॥**

**मूलार्थ** – नाभाजी कहते हैं कि मुझको मेरे सद्गुरुदेव श्रीअग्रदेव अर्थात् श्रीअग्रदासजीने यह आज्ञा दी कि हे नारायणदास नाभा! तुम भगवान्‌के भक्तोंका ही यश गाओ, क्योंकि भवसागरसे पार होनेके लिये और कोई दूसरा उपाय है ही नहीं। एकमात्र भगवद्भक्तोंका यशोगान ही भवसागरसे तरनेका उपाय है।

श्रीनाभाजीके जीवनवृत्तके संबन्धमें एक महत्त्वपूर्ण, प्रेरणास्पद तथा रोचक प्रसिद्धि है कि हनुमान्‌वंश अर्थात् श्रीहनुमान्‌जी द्वारा प्रचारित श्रीरामभक्तिकी परम्परामें श्रीनाभाजीका जन्म हुआ। वे जन्मना ब्राह्मण थे। जन्मसे ही नाभाजीके पास दोनों नेत्रोंके चिह्न भी नहीं थे। नाभाजी अत्यन्त

दीन परिवारमें जन्मे थे और उनकी दृष्टिबाधित दशा और दरिद्रताको देखकर उनकी माताजीने अपने पञ्चवर्षीय अन्धबालकको दुष्कालसे पीड़ित होनेके कारण एक निर्जन वनमें छोड़ दिया था। नाभाजी महाराज अनाथ हो गए और दृष्टिहीनताकी विडम्बनामें इतस्ततः भटक रहे थे। संयोगसे वहाँसे निकल पड़े थे श्रीपतितपावन पयहारीजी श्रीकृष्णदासजीके अनन्य कृपापात्र युगलसंतचरण – श्रीकील्हदासजी एवं श्रीअग्रदासजी। उन दोनों संतोंकी दृष्टि माताके द्वारा परित्यक्त, अनाथ, निरुपाय, क्षुधा-पिपासासे व्याकुल इस दृष्टिहीन बालकपर पड़ी। संतोंका हृदय पिघल गया। वे बालकके पास आए। बालक तो उनको देख ही नहीं रहा था। पूछा – "वत्स! कहाँसे आ रहे हो?" बालकने उत्तर दिया – श्रीसीतारामजीके चरणोंसे।" पूछा – "कहाँ जाओगे?" बालकने उत्तर दिया – "जहाँ भगवान् और आप श्रीसंतगण भेज देंगे, वहीं चला जाऊँगा।" बालककी प्रत्युत्पन्न बुद्धि देखकर संतचरण भावुक हो उठे। श्रीकील्हदासजीने करुणा करते हुए अपने कमण्डलुका जल बालकके नेत्रस्थानपर छिड़क दिया। उनकी सिद्धिके बलसे बालकके नेत्र आ गए और बालकने प्रथम बार ही नवागत नेत्रोंसे इन युगल संत-चरणोंके दर्शन किये। धन्य हो गया बालक। नाभाजीको निष्किञ्चन देखकर कील्हदासजी और अग्रदासजी उसे अपने संग गलता ले आए, और कील्हदासजीने अपने छोटे गुरुभ्राता अग्रदासको इस बालकको श्रीरामानन्दीय विरक्त परम्परामें दीक्षित करनेका आदेश दिया। अग्रदासजीने बालकको विरक्त परम्परामें पञ्चसंस्कारविधिसे दीक्षित किया और इनका विरक्तपरम्पराका नाम रखा **नारायणदास**। नारायणदास सद्गुरुदेव भगवान्‌की आज्ञासे गलतेमें चल रही संतसेवामें रुचि लेने लगे। आने वाले प्रत्येक संतका वे चरणप्रक्षालन करते, उन्हें प्रसाद पवाते और उनका उच्छिष्ट अर्थात् जूठन प्रसाद लेकर स्वयं अपनी क्षुधा बुझाते थे। संत-सेवासे जब अवसर मिलता तो वे अपने गुरुदेव श्रीअग्रदासजी महाराजकी सेवा भी करते थे।

एक दिन जब श्रीअग्रदासजी महाराज श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कर रहे थे, उस समय नारायणदासजी पंखा झल रहे थे। संयोगसे उसी समय अग्रदासजीके किसी भक्तकी नाव समुद्रकी भँवरमें अटक गई थी, फँस गयी थी। उन्होंने अग्रदासजी महाराजका स्मरण किया। भक्तके मानसिक स्मरणसे अग्रदासजी महाराजकी मानसी सेवामें थोड़ी-सी बाधा पड़ रही थी। नाभाजीने उनकी मनोदशाको भाँप लिया और अपने पंखेको थोड़ा-सा वेगसे चलाया और उसकी वायुसे समुद्रकी भँवरमें फँसी हुई भक्तकी नाव आगे चली गई। नाभाजीने विनम्रतासे प्रार्थना की – "गुरुदेव! आप प्रेमसे श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कीजिये। आपके संकटका मैंने अपने पंखेकी वायुसे समाधान

कर दिया है।" अग्रदासजी अपने शिष्यकी इस चामत्कारिक परिस्थितिको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा – "बेटे! तुमने मेरी नाभिकी ही परिस्थिति समझ ली, इसलिये आजसे तुम्हारा उपनाम मैं **नाभा** रख रहा हूँ।"

नाभा नामके सम्मानके संबन्धमें संतोंके मुखसे एक और कथा सुनी गई है। वह यह कि अग्रदासजी भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कर रहे थे। मानसी सेवामें प्रभुको मुकुट धारण करवा दिया था और माला धारण करानी थी। मानसी भावनामें माला छोटी थी जो मुकुटके ऊपरसे धारण करानेमें कुछ जटिल-सी लग रही थी। अग्रदासजी प्रयास कर रहे थे, परन्तु वह माला भगवान् श्रीसीतारामजीके गलेमें जा नहीं रही थी। उसी समय नारायणदासने कहा – "गुरुदेव! पहले मानसी सेवामें मुकुट उतार लिया जाए, माला धारण कराकर फिर मुकुट धारण करा दिया जाए, सब ठीक हो जाएगा।" तब अग्रदासजीने कहा कि –"तुमने तो मेरी नाभिकी ही बात जान ली, आजसे तुम्हारा उपनाम **नाभा** होगा। और नाभा! तुम भगवान् नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीके अवतार हो। तुममें ब्रह्माजीका अंश है। ब्रह्माजी भक्ति संप्रदायके प्रथम आचार्य हैं। इसलिये जैसे ब्रह्माजीकी प्रेरणासे वाल्मीकीय रामायणकी रचना हुई उसी प्रकार तुम, जोकि ब्रह्माजीके अंश हो, भक्तोंका ही यशोगान करो। श्रीरामकृष्णके यशोगानके लिये तो भगवान्ने कलिकालमें तुलसीदास और सूरदासको नियुक्त कर दिया है। श्रीरामका यशोगान करनेके लिये नियुक्त हुए हैं गोस्वामी तुलसीदास, जिन्होंने रामचरितमानस द्वारा श्रीरामचरितकी १०० करोड़ रामायणोंका इतिवृत्त गागरमें सागरकी भाँति संक्षिप्त किन्तु विशिष्ट शैलीमें प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्णका यशोगान करनेके लियेअद्भुत दिव्यदृष्टि-संपन्न महात्मा सूरदासजीको भगवान्ने नियुक्त किया है, जिन्होंने सूरसागरकी रचना कर दी है। अतः अब तुम भक्तोंका ही यशोगान करो। **भवसागर के तरन को** – भवसागर पार करनेके लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है। भवसागर पार करनेकी नाव शुद्ध संतोंके चरण हैं। अतः भक्तोंका यश गाओ। चिन्ता मत करना, जैसे तुमने मेरी नाभिकी बात जान ली उसी प्रकार जिन भक्तचरणका तुम वर्णन करोगे वे अपने उपयुक्त चरित्रोंको तुम्हारे मनमें स्वयं प्रतिबिम्बित कर देंगे। निर्भीक हो जाओ। भक्तोंका यश गाओ। कल्याण होगा।"

उसी प्रकार आज्ञाका पालन करते हुए नाभाजी कह रहे हैं कि मैं अब भक्तमालकी सरस रचना कर रहा हूँ।

॥ ५ ॥

**चौबीस रूप लीला रुचिर ( श्री )अग्रदास उर पद धरौ॥**
**जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन।**
**परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जगपावन॥**
**बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।**
**जग्य ऋषभ हयग्रीव ध्रुव बरदेन धन्वन्तर॥**
**बदरीपति दत्त कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।**
**चौबीस रूप लीला रुचिर ( श्री )अग्रदास उर पद धरौ॥**

**मूलार्थ** – चूँकि भगवान् भक्तोंके लिये ही अवतार लेते हैं और भगवान्का यह संकेत भी है कि जो भक्त उनका भजन करते हैं, उनकी भगवान् चौबीसों घण्टे रक्षा करते हैं। अतः भक्तोंके आनन्दके लिये भगवान्ने यह निर्णय लिया कि मैं भक्तोंके मनमें विश्वास दिलानेके लिये चौबीसों घण्टोंके क्रमसे चौबीस अवतार लूँगा। इसीलिये भगवान्के मुख्य चौबीस अवतार, जो भागवतजीके द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें वर्णित हैं, उन्हींकी यहाँ नाभाजी चर्चा कर रहे हैं। **मीन** अर्थात् मत्स्य, **कमठ** अर्थात् कच्छप, **नरहरि** अर्थात् नरसिंह।

हे मत्स्यावतार भगवान्! आपकी जय हो!! हे वराहावतार भगवान्! आपकी जय हो!! हे कच्छपावतार प्रभु! आपकी जय हो!! हे नरसिंह भगवान्! आपकी जय हो!! हे बलिके लिये वामन रूपमें उपस्थित अवतीर्ण वामन भगवान्! आपकी जय हो!! हे परशुराम भगवान्! आपकी जय हो!! हे रघुवीर अर्थात् रघुकुलमें वीर भगवान् श्रीराम! आपकी जय हो!! हे जगत्को पवित्र करनेवाली कीर्तिसे युक्त श्रीकृष्ण भगवान्! आपकी जय हो!! हे कीकट प्रदेशमें अजनको पिता मानकर जन्मे हुए बुद्ध भगवान्! आपकी जय हो!! हे सम्भल ग्राममें जन्म लेनेवाले युगान्तावतार कल्कि भगवान्! आपकी जय हो!! हे वेदव्यास भगवान्! आपकी जय हो!! हे पृथु भगवान्! आपकी जय हो!! हे गजेन्द्रको बचानेवाले हरि अवतार भगवान्! आपकी जय हो! हे सनकादिकोंके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये हंस रूपमें अवतीर्ण हंसावतार भगवान्! आपकी जय हो!! हे चौदहों मन्वन्तराधिपतियोंके रूपमें प्रकट हुए मन्वन्तरावतार भगवान्! आपकी जय हो!! हे यज्ञनारायण भगवान्! आपकी जय हो!! हे ऋषभदेव भगवान्! आपकी जय हो!! हे हयग्रीव भगवान्! आपकी जय हो!! हे ध्रुवको

वर देनेवाले सहस्र सिरोंसे युक्त सहस्रशीर्षावतार भगवान्! आपकी जय हो!! हे धन्वन्तरि भगवान्! आपकी जय हो!! हे बदरीपति अर्थात् बदरीनारायण भगवान्! आपकी जय हो!! हे दत्तात्रेय भगवान्! आपकी जय हो!! हे कपिलदेव भगवान्! आपकी जय हो!! हे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार सनकादि भगवान्! आपकी जय हो!! इस प्रकार सुन्दर लीलाओंको करनेके लिये चौबीस रूप धारण किये हुए प्रभु! आप अग्रदास गुरुदेवजीके सहित मुझ नारायणदासके हृदयमें अपना श्रीचरण पधरा दें।

भगवान्के चौबीसों अवतार भक्तोंके आनन्दके लिये ही तो हुए हैं। वे सभी पूर्ण हैं, वे सभी अनादि हैं, वे सभी अनन्त हैं, वे सभी नित्य हैं। उनमें न कभी हानि होती है, न उनमें कभी उपादान होता है। ये शाश्वत हैं, इसलिये कहा जाता है – **सर्वे देहाः शाश्वताश्च नित्यस्य परमात्मनः**।

(१) चाक्षुष मन्वन्तरका जब प्रलय उपस्थित हुआ था, तब राजर्षि सत्यव्रतके समक्ष भगवान्ने मत्स्यावतार धारण किया था और उन्हींकी सींगमें पृथ्वीको, जो नाव बनकर उपस्थित हुई थी, सत्यव्रतने बाँध दिया था, तथा उसीपर संपूर्ण बीजोंके सहित सत्यव्रत स्वयं आरूढ़ हुए थे और तब तक भगवान्ने उस नावको डूबनेसे बचाया जब तक प्रलयकी लीला चली। उसी समय निद्रावशीभूत ब्रह्माजीके मुखसे चारों वेद स्खलित हो गए थे। उन्हें शङ्खासुरने चुरा लिया था, और मत्स्यावतारमें भगवान्ने शङ्खासुरका वध करके चारों वेद फिर ब्रह्माजीको प्रत्यावर्तित किये थे। अतः भागवतकार भागवतजीके अष्टमस्कन्धके अन्तमें यह कहते हैं –

**प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।**
**दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥**

(भा.पु. ८.२४.६१)

मत्स्यावतार भगवान्की जय हो!!

(२) श्वेतवाराह कल्पके प्रारम्भमें जब हिरण्याक्षने ब्रह्माजीके द्वारा सद्यःरचित पृथ्वीको चुरा लिया था और अपने शरीरके दक्षिण भागसे प्रकट हुए मनुको जब ब्रह्माजीने यज्ञ करने और प्रजाकी उत्पत्ति करनेके लिये आदेश किया था तब मनुने अपना धर्मसंकट बताया कि पृथ्वी तो है ही नहीं, फिर आपकी आज्ञाका पालन मैं कैसे करूँ? उस समय ब्रह्माजी चिन्तित हुए और चिन्तित हुए ब्रह्माजीकी नासिकाके दक्षिण छिद्रसे छोटे-से शूकरके बच्चेके रूपमें भगवान् वराहका प्राकट्य हुआ –

**इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ।**
**वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः॥**

(भा.पु. ३.१३.१८)

क्षणभरमें सबके देखते-देखते भगवान्का शरीर बढ़ा और वे विशालकाय होकर सबको दर्शन देने लगे। अपने घर्घरा शब्दसे, घुरघुराहटसे चिन्तित हुए ब्रह्मा और ब्रह्माजीके मानस-पुत्रोंके खेदको नष्ट करते हुए भगवान् शूकर समुद्रमें कूद पड़े, और जलगर्भमें जाकर शयन कर रही पृथ्वीको भगवान्ने अपने दाँतके अग्रभागमें स्थापित किया। लेकर उपर आ रहे थे, वहीं हिरण्याक्षने भगवान्का प्रतिरोध किया। और वराह भगवान्ने योगबलसे पृथ्वीको स्थापित करके तुमुल युद्ध करके हिरण्याक्षका वध किया। वराह भगवान्की जय!!

(३) समुद्रके मन्थनके समय जब गरुड द्वारा लाया गया मन्दराचल पर्वत पातालमें धँसने लगा, तब उसे संभालनेके लिये भगवान्ने अनन्तयोजनायत कच्छपावतार धारण किया। और कच्छप भगवान्ने अपनी पीठपर मन्दराचलको स्थापित कर लिया। और तब तक उसे अपनी पीठपर रखा जब तक समुद्र-मन्थनकी लीला चली। कच्छप भगवान्की जय!!

(४) हिरण्यकशिपुके अत्याचारसे जब समस्त जीवजाति भयभीत हो गई और हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे यह वरदान माँग लिया कि **भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो** (भा.पु. ७.३.३५) अर्थात् आपके द्वारा रचे हुए किसी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो, तब भगवान्ने प्रह्लादकी भक्तिसे प्रभावित होकर लोहेके खंभेके मध्यसे उसे फाड़कर नरसिंहावतार स्वीकारा –

**सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।**
**अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥**

(भा.पु. ७.८.१८)

अर्थात् अपने भक्तके वचनको सत्य करनेके लिये, अपनी व्याप्तिको संपूर्ण जीवोंमें प्रमाणित करनेके लिये, स्तम्भके मध्यसे अत्यन्त अद्भुतरूप धारण करते हुए भगवान् प्रकट हो रहे हैं जो पूर्णरूपसे न तो सिंह हैं न मनुष्य, अर्थात् अधःकायसे भगवान् मनुष्य हैं और ऊर्ध्वकायसे सिंह। इन्हीं नरसिंह भगवान्ने हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण किया। श्रीनरसिंह भगवान्की जय!!

(५) बलिजीने निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ कर लिये, उनका सौवाँ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यदि वह पूर्ण हो जाता तो बलि इन्द्र हो जाते। अदितिने इस व्यवहारसे दुःखी होकर पयोव्रतके माध्यमसे

भगवान्‌को संतुष्ट कर लिया। फिर भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको अभिजित् मुहूर्त अर्थात् मध्याह्नमें भगवान् शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मके साथ अदितिके समक्ष प्रकट हुए, परन्तु अदिति-कश्यपकी प्रार्थनासे उन्होंने छोटे-से वामन वटुका रूप धारण कर लिया। उपवीत संस्कारके अनन्तर अग्निका परिसमूहन करके, दिव्य पादुका धारण करते हुए, दण्ड एवं कमण्डलु लिये हुए, वाजपेय छत्रको स्वीकार करते हुए भगवान् बलिकी यज्ञशाला भृगुकच्छमें पधारे।

**श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः।**
**जगाम तत्राखिलसारसम्भृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे॥**

(भा.पु. ८.१८.२०)

अर्थात् अपने श्रीचरणके भारसे पृथ्वीको पग-पगपर झुकाते हुए, संपूर्ण तत्त्वोंसे मण्डित भगवान् वामन बलिको अश्वमेधोंके कारण ऊर्जित सुनकर उनकी यज्ञशालामें पधारे। भगवान् वामनको देखकर बलिने नमन किया और कुछ माँगनेकी प्रार्थनाकी। भगवान्‌ने बलिसे कहा – "मैं तुमसे सिर्फ तीन पद भूमि माँग रहा हूँ। वह भी मैं अपने चरणसे नापूँगा," –

**तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात्।**
**पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम॥**

(भा.पु. ८.१९.१६)

बलिने संकल्प ले लिया और भगवान्‌ने विराट् रूप धारण करके प्रथम पदसे संपूर्ण नीचेके लोकोंको, और द्वितीय पदसे ऊर्ध्वके लोकोंको माप लिया। तृतीय पदके लिये कुछ भी भूभाग अवशिष्ट न रहा। उन्हीं वामन भगवान्‌के चरणको धोकर ब्रह्माजीने गङ्गाजीको प्रकट कर लिया। अनन्तर, दान न देनेके अपराधमें भगवान्‌ने बलिको गरुड द्वारा वरुणपाशमें बँधवाया और उन्हें पाताल भेज दिया। वामन भगवान्‌की जय!!

(६) जब हैहयवंशमें प्रसूत सहस्रबाहु आवश्यकतासे अधिक उद्धत हो गया, और उसने ब्राह्मणोंके प्रति विद्रोह करनेकी ठानी, तब महर्षि जमदग्निके संकल्पसे रेणुकाके गर्भसे वैशाख शुक्ल तृतीयाको भगवान् परशुरामका प्राकट्य हुआ और उन्होंने इक्कीस बार ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियोंका संहार किया, संपूर्ण पृथ्वी कश्यपको दे दी, और अन्ततोगत्वा अपनेमें उपस्थित नारायणकी समस्त कलाओंको भगवान् श्रीरामके चरणोंमें सौंप दिया। अवतारका कार्य पूर्ण हुआ। परशुराम भगवान्‌की जय!!

(७) जब रावणके अत्याचारसे संपूर्ण पृथ्वी देवताओं, मुनियों, और सिद्धों सहित व्याकुल हो

गई, तब देवताओंके प्रार्थना करनेपर परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म परमात्मा साकेतविहारी श्रीरामजीने रामरूपमें अवतार प्रस्तुत किया। यह अवतार भी हैं और अवतारी भी हैं। और इन्हीं भगवान् श्रीरामके चरित्रको महर्षि वाल्मीकिने सौ करोड़ रामायणोंमें गाया। और अन्य महर्षियोंने भी श्रीरामकथा लिखी, रामायण कथा लिखी। मर्यादामानदण्डको स्थापित करके भगवान् श्रीरामने अन्तमें एक ही बात कही –

**भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।**
**सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः॥**

(स्क.पु.ब्र.ख.ध.मा. ३४.४०)

अर्थात् हे मेरे पश्चात् होनेवाले राजाओं! मैं रामचन्द्र आपको बार-बार प्रणाम करके यह याचना कर रहा हूँ कि **सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः** अर्थात् मेरे द्वारा मनुष्योंके लिये जो सामान्य धर्मसेतु बनाया गया है, उसका आप लोगोंके द्वारा समय-समयपर रक्षण होना ही चाहिये। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर भगवान् श्रीरामकी जय!!

(८) कंसके अत्याचारसे पृथ्वी और देवताओंको दुःखी देखकर साधुओंकी रक्षा करनेके लिये, दुष्टोंका नाश करनेके लिये, और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवान् देवकी-वसुदेवके यहाँ प्रकट हुए। भगवान्ने दिव्य बाल-लीलाएँ की, पूतनासे लेकर विदूरथ पर्यन्त दुर्दान्त असुरोंका संहार किया, अर्जुनको कुरुक्षेत्रमें गीता सुनाई, और अनन्तर अपने परिवारको ही राष्ट्रद्रोही व उद्दण्ड देखकर अपने ही शस्त्रोंसे उपसंहृत कर प्रभुने अपनी इहलीलाका संवरण कर लिया। श्रीकृष्ण भगवान्की जय!!

(९) युगसन्ध्यामें राजाओंके दस्युप्राय हो जानेपर हिंसाकी बहुलताको देखकर कीकट प्रदेशमें अजन नामक क्षत्रियके यहाँ भगवान् बुद्धका अवतार हुआ। वही बुद्ध भगवान् अन्ततोगत्वा उड़ीसामें जगन्नाथके रूपमें प्रसिद्ध हुए। जगन्नाथ बुद्ध भगवान्की जय!!

(१०) इस कलिकालके अन्तमें सम्भल ग्राममें कल्किके रूपमें भगवान्का आविर्भाव होगा, जो शङ्करजीसे शस्त्रविद्या प्राप्त करके, सूर्यनारायणसे दिव्य घोड़ा प्राप्त करके, असुरोंका संहार कर पुनः कृतयुगकी प्रतिष्ठापना करेंगे। कल्कि भगवान्की जय!!

(११) द्वापरके तृतीय भागमें पराशर महर्षिके मानसिक संकल्पसे सत्यवतीके गर्भसे भगवान् वेदव्यासका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने वेदको ऋक्, अथर्व, यजुष् और साम – इन चार भागोंमें विभक्त किया, अठारह पुराणोंकी रचनाकी और महाभारत जैसे विशालकाय लक्षश्लोकात्मक ग्रन्थकी रचनाकी। वेदव्यास भगवान्की जय!!

(१२) ध्रुवके ही वंशमें अङ्गके पौत्रके रूपमें नास्तिक वेनकी दक्षिण भुजाको मथनेपर भगवान् पृथुका आविर्भाव हुआ। इन्हीं पृथुने अपने सौवें अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको ही हवनकुण्डमें गिरनेके लिये विवश कर दिया, और भगवान्‌के अनुरोध करनेपर कह दिया कि मुझे संतोंके मुखसे कथा सुनते समय दो कानोंमें दस हजार कानोंकी शक्ति दे दी जाए। अनन्तर सनकादिके उपदेशसे उन्होंने अपनी लौकिक लीलाका संवरण कर लिया। भगवान् पृथुदेवकी जय!!

(१३) ग्राहके द्वारा ग्रसे जानेपर गजेन्द्रने जब पुकार लगाई तब हरिमेधा महर्षिके आश्रममें रहनेवाली मृगीको ही माँ बनाकर उसीके गर्भसे प्रभुका हरि अवतार हुआ, और भगवान्‌ने दौड़कर सुदर्शनचक्रसे ग्राहका मुख फाड़कर गजेन्द्रकी रक्षा कर ली। गजेन्द्ररक्षक हरि भगवान्‌की जय!!

(१४) सनकादिके द्वारा पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर जब ब्रह्माजी नहीं दे सके तब सनकादिके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये ही ब्रह्मसभामें भगवान्‌का हंसके रूपमें अवतार हुआ, और सनकादिके प्रश्नोंका उत्तर देकर भगवान्‌ने उन्हें संतुष्ट किया। हंसावतार भगवान्‌की जय!!

(१५) चौदह मन्वन्तरोंके अधिपतिके रूपमें भगवान्‌का मन्वन्तरावतार होता है, भगवान् चौदहों रूपोंमें देखे जाते हैं और उनके द्वारा वैदिक धर्मकी रक्षा होती है। वर्तमानमें सप्तम मनुके कार्यकालमें हम लोग रह रहे हैं जिसे हम वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। मन्वन्तरावतार भगवान्‌की जय!!

(१६) स्वायम्भुव मनुकी प्रथम पुत्री आकूति, जिनका विवाह रुचिके साथ हुआ था, उनके गर्भसे यज्ञनारायणका आविर्भाव हुआ। उनको मनुने दत्तक पुत्रके रूपमें स्वीकार कर ले लिया था और उन्होंने अपने पुत्रोंके साथ मनुकी रक्षा की, इन्द्र बने और यज्ञका विस्तार किया। यज्ञनारायण भगवान्‌की जय!!

(१७) प्रियव्रतके प्रपौत्रके रूपमें महाराज नाभिकी धर्मपत्नी मरुदेवीमें भगवान् ऋषभदेवका आविर्भाव हुआ। इन्द्रने उनसे अपनी जयन्ती नामक कन्याका विवाह किया। सौ पुत्रोंको जन्म देकर भगवान् ऋषभदेवने परमहंसपद्धतिका जनताके समक्ष प्राकट्य किया और अन्ततोगत्वा उसी अवधारणाके फलस्वरूप उन्होंने अपने अवतारको समेट लिया। ऋषभदेव भगवान्‌की जय!!

(१८) ब्रह्माजीके यज्ञमें जब मधु-कैटभ दानवोंने वेदको चुरा लिया था तब भगवान् हयग्रीवके रूपमें अवतीर्ण हुए, और उन्होंने मधु-कैटभको मारकर पुनः वेद भगवान्‌को ब्रह्माजीके लिये उपस्थित कर दिया। हयग्रीव भगवान्‌की जय!!

(१९) मनुजीके पौत्र ध्रुवजीको वर देनेके लिये भगवान्‌का सहस्रशीर्षावतार हुआ –

**त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्।**
**सहस्त्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥**

(भा.पु. ४.९.१)

उन्हीं सहस्त्रशीर्ष भगवान्ने अपने एक सहस्त्र मुखोंसे ध्रुवको चूमा, दुलारा और अन्तमें उन्हें सर्वोच्च ध्रुवपद दे दिया। श्रीसहस्त्रशीर्ष भगवान्की जय!!

(२०) भगवान्ने अमृतमन्थनके समय ही आयुर्वेदके प्रवर्तक धन्वन्तरिके रूपमें अवतार लिया, आयुर्वेदका आविष्कार किया और पुनः भगवान् काशीराजके यहाँ भी पुत्रके रूपमें धन्वन्तरिके रूपमें अवतीर्ण हुए। वह अवतार तिथि है कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, जिसे भाषामें धनतेरस भी कहते हैं। धन्वन्तरि भगवान्की जय!!

(२१) मनुजीकी तृतीय पुत्री प्रसूतिकी तेरहवीं पुत्री मूर्तिके गर्भसे भगवान् नर-नारायणके रूपमें प्रकट हुए अर्थात् नर-नारायणने धर्मको पिता और मूर्तिको माता माना। गन्धमादन पर्वतपर भगवान् उपस्थित हुए। उन्होंने ही सहस्त्रकवच नामक राक्षसका संहार किया और उर्वशीको अर्पित कर इन्द्रका मद चूर कर दिया। आज भी बदरीक्षेत्रमें विराज कर अपने दर्शनसे प्रत्येक व्यक्तिके एक जन्मके पापोंको नष्ट करते रहते हैं। वही हैं इस भारतवर्षके प्रधान देवता। नर-नारायण भगवान्की जय!!

(२२) मनुजीकी द्वितीय पुत्री देवहूतिजीकी भी द्वितीय पुत्री अनसूयाजीके यहाँ भगवान् दत्तात्रेयके रूपमें प्रकट हुए। भगवान्ने अत्रि-अनसूयाको कह दिया कि मैंने अपने-आपको ही आपको दे दिया है, इसलिये मेरा नाम अब **दत्त** होगा। इन्हीं दत्तात्रेय भगवान्की चरण-कमलकी धूलिका सेवन करके यदु, हैहय आदियोंने योगसिद्धि प्राप्त की। उनके लोक और परलोक दोनों बन गए। दत्तात्रेय भगवान्ने गुरु परम्पराका पूर्णरूपसे प्रवर्तन किया। आज भी गिरनार अर्थात् रैवतक पर्वतपर दत्तात्रेय भगवान्की पादुकाएँ विराजमान हैं। दत्तात्रेय भगवान्की जय!!

(२३) मनुजीकी द्वितीय पुत्री देवहूति, जिनका विवाह महर्षि कर्दमके साथ हुआ था, उनके गर्भसे दशम सन्तानके रूपमें कपिलदेव भगवान्का प्राकट्य हुआ –

**तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः।**
**कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि॥**

(भा.पु. ३.२४.६)

कपिलदेवने अपनी माँको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया, जिसे **कपिलाष्टाध्यायी** कहते हैं। माताजीको

आध्यात्मिक उपदेश देकर स्वयं प्रभु गङ्गासागरको पधार गए, जिसके लिये आज भी यह सूक्ति प्रचलित है – **सौ तीरथ बार-बार गङ्गासागर एक बार**। ऐसे कपिलदेव भगवान्‌की जय!!

(२४) ब्रह्माजीकी प्रथम मानसी सृष्टिके रूपमें सनक, सनातन, सनन्दन, और सनत्कुमारका प्राकट्य हुआ। ये साक्षात् भगवान् ही हैं, जिनके लिये गोस्वामीजी उत्तरकाण्डमें कहते हैं –

**जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन शील सुहाए॥**
**ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥**
**रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरशी मुनि बिगत बिभेदा॥**
**आशा बसन ब्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥**
**तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी॥**

(मा. ७.३२.३-७)

श्रीसनकादि भगवान्‌की जय!!

इस प्रकार दिव्य-दिव्य लीलाएँ करके भगवान् भक्तोंका सतत अनुरञ्जन करते रहते हैं। चौबीस अवतार धारण करने वाले भगवान्‌की जय!!

**॥ ६ ॥**

**चरन चिन्ह रघुबीरके संतन सदा सहायका॥**
**अंकुस अंबरकुलिस कमल जव ध्वजा धेनुपद।**
**संख चक्र स्वस्तीक जम्बुफल कलससुधाह्रद॥**
**अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेषा।**
**अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुष बिशेषा॥**
**सीतापतिपद नित बसत एते मंगलदायका।**
**चरन चिन्ह रघुबीरके संतन सदा सहायका॥**

**मूलार्थ** – चूँकि नाभाजी महाराज श्रीसंप्रदायानुगत श्रीरामानन्दी श्रीवैष्णव हैं और श्रीरामोपासक हैं, इसलिये भक्तमाल-लेखनके पूर्व यह उनके लिये आवश्यक हो जाता है कि वे भगवान्‌के चरणचिह्नोंका ध्यान करें। और जैसा कि हम पूर्वमें कह चुके हैं कि मुख्य रूपसे **भगवत्**-पदवाच्य प्रभु श्रीरामजी ही हैं, इसलिये नाभाजी महाराजने भक्तमाल ग्रन्थकी रचनाके प्रारम्भमें भगवान् रामके

श्रीचरणचिह्नोंका चिन्तन किया है। वे कहते हैं कि रघुकुलमें वीर अर्थात् त्यागवीरता, दयावीरता, विद्यावीरता, पराक्रमवीरता और धर्मवीरतासे युक्त भगवान् श्रीरामके श्रीचरणकमलोंके चिह्न संतोंके सदैव सहायक रहते हैं, संतोंकी निरन्तर सहायता करते रहते हैं।

ये हैं – **अङ्कुश** अर्थात् बर्छी, **अंबर – अम्बर** शब्दका तात्पर्य आकाश और वस्त्र इन दोनोंसे है, **कुलिश** अर्थात् वज्र, **कमल**, **जव** अर्थात् यव (धान्य विशेष), **ध्वजा**, **धेनुपद** अर्थात् गोपद, **शङ्ख**, **चक्र**, **स्वस्तिक** चिह्न, **जम्बुफल** (जामुनका फल), **कलश** एवं अमृतका सरोवर, **अर्धचन्द्र**, **षट्कोण**, मछलीका चिह्न, **बिन्दु**, **ऊर्ध्वरेखा**, **अष्टकोण**, **त्रिकोण**, **इन्द्र** अर्थात् इन्द्रदेवताका चिह्न, **धनुष**का चिह्न एवं **विशेष पुरुष** अर्थात् नित्य जीवात्माका चिह्न। अर्थात् (१) अङ्कुश (२) आकाश (३) वस्त्र (४) वज्र (५) कमल (६) यव (७) ध्वजा (८) गोपद (९) शङ्ख (१०) चक्र (११) स्वस्तिक (१२) जम्बूफल (१३) कलश (१४) अमृतसरोवर (१५) अर्धचन्द्र (१६) षट्कोण (१७) मछली (१८) बिन्दु (१९) ऊर्ध्वरेखा (२०) अष्टकोण (२१) त्रिकोण (२२) इन्द्र (२३) धनुष एवं (२४) विशेष जीवात्मा – ये चौबीसों चिह्नके रूपमें सीतापति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें निरन्तर विराजते रहते हैं। ये निरन्तर स्मरण-मात्रसे मङ्गलदायक बन जाते हैं और ये ही भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंके चौबीसों चिह्न संतोंके लिये निरन्तर सहायक सिद्ध होते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि प्रियादासजीसे प्रारम्भ करके आज तकके जितने टीकाकार हुए हैं, प्रायः सबके मतमें भगवान्‌के २२ ही चरण-चिह्न कहे जाते हैं। किन्तु भगवान् श्रीरामकी कृपासे मेरे मनमें इस प्रकारकी स्फुरणा हुई कि अम्बर शब्दमें श्लेषका यहाँ प्रयोग हुआ है, और इन्द्र तथा धनु – ये दो अलग-अलग शब्द हैं। अब दोनोंको मिलाकर ये २४ चरणचिह्न बन जाते हैं, अर्थात् १२ चरणचिह्न दक्षिण चरणमें और १२ चरणचिह्न वामचरणमें – ऐसी भी योजना की जा सकती है, अथवा दोनों चरणोंमें ये ही २४ चरण-चिह्न समझने होंगे। यह तो साधकके ध्यानमें जैसे स्फुरित होंगे, वैसे उसे योजना करनी होगी। वस्तुतस्तु मेरे ध्यानमें स्फुरित जो हो रहे हैं भगवान्‌के चरणचिह्न, वे इसी प्रकार हैं कि १२ दक्षिण चरणचिह्न हैं और १२ वाम चरणचिह्न हैं।

प्रत्येक चरण चिह्नका कोई न कोई अभिप्राय है –

(१) भगवान्‌के चरणमें **अङ्कुश**का चिह्न इसीलिये है कि इसके ध्यानसे मन रूप मतवाला हाथी वशमें हो जाता है।

(२) **अम्बर** शब्द श्लिष्ट है। प्रथम अम्बरका अर्थ है आकाश, द्वितीय अम्बरका अर्थ है वस्त्र। **आकाश**के चरणचिह्नका अभिप्राय यह हैकि भगवान् आकाशकी भाँति सबको अपने चरणोंमें अवकाश देते हैं, सबको स्वीकार करते हैं। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा भी – **नभशत कोटि अमित अवकासा** (मा. ७.९१.८)।

(३) पुन: **अम्बर** शब्दका अभिप्राय वस्त्रसे है। इसका तात्पर्य है कि भगवान् अपने भक्तको कभी भी साधनहीन नहीं रखते, सबको वस्त्रादि प्रदान करके धन्य करते रहते हैं। भगवान्के यहाँ कोई दिगम्बर नहीं रहता, सबको अन्न-वस्त्र मिलते ही हैं।

(४) **कुलिश**का तात्पर्य यह है कि जैसे वज्र पर्वतको नष्ट करता है, उसी प्रकार भगवान्के इस वज्रचिह्नका ध्यान करनेसे पापपर्वत नष्ट हो जाता है।

(५) **कमल**का तात्पर्य है कि जैसे कमल सबमें सुगन्धिका संचार करता है, उसी प्रकार भगवान्का यह चरणचिह्न स्मरणमात्रसे भक्तकी दुर्वासना रूप दुर्गन्धको दूर करके उपासनाकी सुगन्धि उसमें ला देता है।

(६) **यव** संपूर्ण धान्योंका उपलक्षण है। भगवान्का भक्त धन-धान्यसे पूर्ण ही रहता है।

(७) **ध्वजा** या पताकाका दण्ड। जैसे ध्वजा पताकाको ऊपर किये रहती है, उसी प्रकार भगवद्भक्तका जीवन निरन्तर ऊर्ध्वगामी होता रहता है, सबसे ऊपर ही रहता है, वह किसीके नीचे नहीं रहता।

(८) **धेनुपद** अर्थात् गोपदका तात्पर्य है कि भगवान्के चरणकमलका स्मरण करके व्यक्ति संसार-सागरको गोपदकी भाँति अर्थात् गौके खुरकी भाँति सरलतासे पार कर लेता है, और उसपर गोमाताकी कृपा बनी रहती है।

(९) **शङ्ख** मङ्गलका सूचक है।

(१०) **चक्र** स्मरण-मात्रसे भक्तको कालके भयसे छुड़ाता रहता है।

(११) **स्वस्तिक** मङ्गलका सूचक है। शङ्ख और स्वस्तिकमें अन्तर यह है कि शङ्ख चरणचिह्नके स्मरणसे विजयपूर्वक मङ्गल होता है और स्वस्तिक चरणचिह्नका स्मरण करनेसे और सभी मङ्गल होते रहते हैं।

(१२) **जम्बुफल**का तात्पर्य है कि इसके स्मरणसे व्यक्तिको सभी फल उपलब्ध होते रहते हैं। और जम्बूफल भगवान्के समान श्याम रङ्गका है। इसके स्मरणसे श्यामशरीर, जम्बूफलश्याम भगवान्

रामका निरन्तर ध्यान होता रहता है।

(१३) **कलश** भी माङ्गलिक चिह्न है। व्यक्तिका हृदय-कलश भक्तिके जलसे पूर्ण रहता है।

(१४) **सुधाह्रद** अर्थात् अमृतका सरोवर। भगवान् श्रीराम स्मरण-मात्रसे अपने भक्तको आनन्दामृतका वितरण करते रहते हैं और उसे आनन्दसरोवरमें स्नान कराते रहते हैं।

(१५) **अर्धचन्द्र** – इसका तात्पर्य है कि भगवान् अपने स्मरण करने वाले भक्तको अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे बचाते रहते हैं, उसके शत्रुओंका नाश करते रहते हैं।

(१६) **षट्कोण**का तात्पर्य है कि भगवान् स्मरण-मात्रसे भक्तको काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य – इन छः विकारोंसे दूर करते रहते हैं।

(१७) **मीन** अर्थात् मछलीका तात्पर्य है कि भगवान्का भक्त इस चरण-चिह्नके स्मरणसे मछलीकी ही भाँति भगवत्प्रेमी बना रहता है, अर्थात् जैसे मछलीजलके बिना नहीं रह पाती, उसी प्रकार भक्त भगवान्के बिना नहीं रह पाता। जैसा कि गोस्वामीजी विनयपत्रिकाके २६९वें पदमें कहते हैं – **राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीनको** (वि.प. २६९.१)। यही अवधारणा श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डके १५१वें दोहेकी ७वीं पङ्क्तिमें स्वयाम्भुव मनुजी महाराज भगवान्के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं कि हे प्रभु श्रीराघव, –

**मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना॥**

(मा. १.१५१.७)

(१८) **बिन्दु** – बिन्दुका तात्पर्य है कि व्यक्तिके जीवनमें भगवदनुरागका बिन्दु उपस्थित रहता है, और वह शून्यतासे सर्वथा दूर रहता है। बिन्दु सबको पूर्ण करता है। अर्थात् जैसे एकके साथ शून्य जब जुड़ता है तो वह एकको दश गुना बना देता है। उसी प्रकार भगवन्नाम एक अङ्क है और सभी साधन शून्यके समान हैं। वह बिन्दु अर्थात् भगवन्नाम प्रत्येक साधनसे जुड़कर उसके फलको दश गुना बना दिया करता है –

**राम नाम इक अंक है सब साधन हैं सून।**
**अंक गये कछु हाथ नहीं अंक रहे दस गून॥**

(दो. १०)

(१९) **ऊर्ध्वरेखा** – ऊर्ध्वरेखाका तात्पर्य है कि यह रेखा भगवान्के भक्तको स्मरण-मात्रसे सतत ऊपर उठाती रहती है।

(२०) **अष्टकोण**का तात्पर्य है कि स्मरण-मात्रसे यह चिह्न भगवद्भक्तको आठों प्रकृतियोंकी विडम्बनाओंसे दूर करता रहता है।

(२१) **त्रिकोण** – यह चिह्न स्मरण-मात्रसे भगवद्भक्तको काम, क्रोध, लोभसे दूर किये रहता है, अथवा त्रिगुणोंसे अतीत कर देता है।

(२२) **इन्द्र** – ये देवराज हैं। इस चरण चिह्नका तात्पर्य है कि स्मरण-मात्रसे भगवान् अपने भक्तको इन्द्र जैसा पद भी दे देते हैं, जैसे महाराज बलिको दे दिया।

(२३) **धनुष** – यह भगवान्का आयुध विशेष है। इसका तात्पर्य है कि यह प्रणव है, स्मरण-मात्रसे व्यक्तिको वैदिक मर्यादाओंसे जोड़े रहता है। **प्रणवं धनुः शरो ह्यात्मा** (मु.उ. २.२.४) – प्रणव ही धनुष है, बाण ही आत्मा है, और **ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते** (मु.उ. २.२.४) – ब्रह्म उसका लक्ष्य है। **अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्** (मु.उ. २.२.४) – अप्रमत्त होकर लक्ष्यकी सिद्धि कर लेनी चाहिये, अर्थात् प्रणवसे सतत जीवात्माका संपर्क बना रहना चाहिये। और दूसरी बात – धनुषका यह भी तात्पर्य है कि धनुष टेढ़ा होता है। इसका संकेत यह है कि भगवान्के यहाँ सीधे और टेढ़े – दोनोंको ही स्थान मिलता है। किसीको भगवान् ठुकराते नहीं, चाहे वह सीधा हो या टेढ़ा हो। और तीसरा तात्पर्य है कि जो धनुषकी भाँति झुक जाता है, उसीको भगवान् अपना आश्रय देते हैं।

(२४) **पुरुष विशेष** – **पुरुष** पद यहाँ जीवात्माका वाचक है, और जीवात्मा तीन प्रकारका होता है – बद्ध, मुक्त और नित्य। यहाँ **पुरुष विशेष**का तात्पर्य यह है कि भगवान्के स्मरण-मात्रसे जीव नित्य बन जाता है अर्थात् बद्ध और मुक्त दोनों परिस्थतियोंसे मुक्त होकर भगवान्की नित्य सेवामें लग जाता है। यहाँ **नित्य** जीवात्माका अर्थ है, भगवान्का नित्य परिकर जैसे श्रीहनुमान् आदि।

इस प्रकार ये चौबीसों चरणचिह्न सीतापति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें निरन्तर निवास करते रहते हैं। ये स्वयं स्मरण-मात्रसे मङ्गलप्रदान करते हैं और ये ही भगवान् श्रीरामके चौबीसों चरण-चिह्न संतोंके लिये निरन्तर सहायक बने रहते हैं।

अब चरणचिह्नोंका स्मरण संपन्न हुआ, और नाभाजीको भक्तमाल जैसे ग्रन्थकी रचना करनी है, तो उन्हें आचार्योंका स्मरण पहले कर लेना चाहिये। भागवतधर्मके बारह आचार्य हैं, जिनका स्मरण यमराजजी करते हैं भागवतजीके षष्ठ स्कन्धके तृतीय अध्यायमें –

**स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।**
**प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥**

(भा.पु. ६.३.२०)

अर्थात् हे बटुओं! (१) श्रीब्रह्माजी (२) श्रीनारदजी (३) श्रीशङ्करजी (४) सनक, सनातन, सनन्दन, और सनत्कुमार – ये चारों सनकादि (५) श्रीकपिलजी (६) स्वायम्भुव मनुजी (७) श्रीप्रह्लादजी (८) श्रीजनकजी (९) श्रीभीष्मजी (१०) श्रीबलिजी (११) श्रीशुकाचार्यजी और (१२) वयम् अर्थात् मैं धर्मस्वरूप यमराज – यही बारह भागवतधर्मोंको जानते हैं। श्रीनाभाजी उन्हींका यहाँ स्मरण कर रहे हैं –

॥ ७ ॥

**इनकी कृपा और पुनि समुझे द्वादस भक्त प्रधान॥**
**बिधि नारद संकर सनकादिक कपिलदेव मनु भूप।**
**नरहरिदास जनक भीषम बलि सुक मुनि धर्मस्वरूप॥**
**अन्तरंग अनुचर हरिजू के जो इनको जस गावे।**
**आदि अंतलौं मंगल तिनको श्रोता बक्ता पावे॥**
**अजामेल परसंगयह निर्णय परम धर्मके जान।**
**इनकी कृपा और पुनि समुझे द्वादस भक्त प्रधान॥**

**मूलार्थ** – (१) **श्रीब्रह्मा** (२) **श्रीनारद** (३) **श्रीशङ्कर** (४) **श्रीसनकादि** (सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार) (५) **श्रीकपिलदेव** (६) महाराज **स्वायम्भुव मनु** (७) **नरहरिदास** अर्थात् नरसिंह भगवान्के दास **श्रीप्रह्लाद** (८) **श्रीजनक** (जो भगवती सीताजीके पिताजी हैं) (९) **पितामह भीष्म** (१०) **श्रीबलि** (११) **श्रीशुकाचार्य** और (१२) धर्मस्वरूप **श्रीयमराजजी** – ये बारह श्रीहरिके अन्तरङ्ग अनुचर हैं। जो इनका यश गा रहे हैं या गाएँगे, उनके लिये आदिसे अन्त पर्यन्त मङ्गल ही मङ्गल होगा। और इनका यशोगान करके श्रोता और वक्ता आदिसे अन्त पर्यन्त मङ्गल प्राप्त करते रहेंगे। अजामिलका यह प्रसंग **परम धर्म** अर्थात् भक्तिके निर्णयका ही प्रसंग समझना चाहिये। इन्हींकी कृपासे और लोग भी भक्तिका रहस्य समझ सकते हैं, क्योंकि ये ही प्रधान द्वादश भक्त हैं।

यहाँ **मनु**से स्वयाम्भुव मनु समझना चाहिये और **जनक** पदसे भगवती सीताजीके पिता श्रीसीरध्वज जनकको समझना चाहिये, जिनके संबन्धमें मानसकार कहते हैं –

**प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहु॥**
**जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥**

(मा. १.१७.१-२)

पितामह **भीष्म** भी भागवतधर्मके आचार्य हैं। ये नवम आचार्य हैं। कदाचित् इसीलिये भागवतकारने पितामह भीष्मका वर्णन भागवतजीके प्रथम स्कन्धके नवम अध्यायमें ही किया है। भीष्मके संबन्धमें एक जिज्ञासा स्वाभाविक है कि जब वे इतने बड़े भागवतधर्माचार्य हैं, तो उन्होंने द्रौपदीकी चीरहरण परिस्थितिको मूकदर्शक होकर क्यों देखा? दुर्योधनका विरोध क्यों नहीं किया? इसका मुझे जो उत्तर सूझ रहा है, वह यह है कि भीष्म अपनी मूकदर्शकतासे भगवान्‌की महिमाका आख्यान करना चाहते हैं, भगवान्‌की महिमाको लोगोंके समक्ष प्रकट करना चाहते हैं। यदि वे दुर्योधनका विरोध कर देते, तब द्रौपदीजीका चीरहरण तो रुक जाता, परन्तु भगवान्‌की चीरवर्धनलीलाको जनताके समक्ष कैसे प्रकट किया जाता? इसलिये मूकदर्शक रहकर पितामह भीष्मने दिखाया कि भगवान् अपने भक्तकी कैसे रक्षा करते हैं। यहाँ भगवान्‌ने द्रौपदीकी लज्जाको रखनेके लिये ११वाँ वस्त्रावतार स्वीकार कर लिया, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी दोहावलीके १६७वें दोहेमें कहते हैं –

**सभा सभासद निरखि पट पकरि उठायो हाथ।**
**तुलसी धरऊ इगारहों बसन रूप जदुनाथ॥**

(दो. १६७)

**बलि** – जो आत्मनिवेदन जैसी भक्तिके एकमात्र उदाहरण हैं।

**शुकाचार्य**का तो कहना ही क्या! उन्होंने तो जन्मसे ही संसारकी असारताका अनुभव कर लिया था, इसलिये संसारमें किसीसे संबन्ध ही नहीं रखा। उनके स्मरणका यह कितना रोचक श्लोक है, जो भागवतके प्रथम स्कन्धके द्वितीय अध्यायके द्वितीय श्लोकके रूपमें प्रस्तुत हो रहा है –

**यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।**
**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥**

(भा.पु. १.२.२)

अर्थात् जो जन्म लेनेके पश्चात् किसीके पास भी नहीं गए, जो अपने संपूर्ण कृत्योंको समाप्त किए हुए

थे, और कभी न आनेके लिये जाते हुए जिनको देखकर विरहसे व्याकुल होकर द्वैपायन वेदव्यासजीने **पुत्र!** इस प्रकार चिल्लाया, और जिनकी भावनासे भावित होकर वृक्ष भी जिनको जाते हुए देखकर **पुत्र! पुत्र!** कहकर चिल्लाने लगे और फिर भी जो अपने निश्चयसे नहीं डिगे और नहीं लौटे – उन्हीं संपूर्ण प्राणिमात्रके हृदयमें विराजमान और संपूर्ण प्राणिमात्रको भगवान्‌के चरणमें आकृष्ट करने वाले भगवान् शुकाचार्यके चरणकमलमें मैं आदरपूर्वक नमन कर रहा हूँ। ऐसे शुकाचार्य, जिन्हें यहाँ ११वें आचार्यके रूपमें कहा जा रहा है।

**धर्मस्वरूप यमराज** – जो पापियोंको दण्ड देनेके लिये यम बन जाते हैं और धार्मिकोंके लिये धर्मके रूपमें रहते ही हैं।

ये बारहों परमभागवतधर्मके वेत्ता आचार्य हैं। ये बारहों भगवान् श्रीहरिजूके अन्तरङ्ग अनुचर हैं। इनके स्मरण, मनन, कीर्तन, गानसे श्रोता और वक्ता आदिसे अन्त पर्यन्त मङ्गल ही प्राप्त करेंगे। चूँकि इनकी अजामिल-प्रसंगमें वेदव्यासजीने चर्चा की है, इसलिये इस प्रसंगको परमधर्मका निर्णय-प्रसंग समझना चाहिये और इन्हींकी कृपासे और लोग भी भक्तिका सिद्धान्त समझ सकते हैं।

अब भक्तमालका प्रारम्भ हो रहा है। जैसा कि हम प्रथम ही कह चुके हैं कि श्रीनाभाजी इस ग्रन्थमें भगवत् पदसे अर्थात् भगवान्‌से तीन विशेष भगवान्‌को अभिप्रेत करते हैं – श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीनारायण। इन्हीं तीनों भगवानोंकी छत्र-छायामें इस भक्तमालका पल्लवन होता है, परन्तु अवतारी तो भगवान् श्रीराम ही हैं। अत एव जब यहाँ भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीनारायणके भक्तोंकी चर्चा करनी है, तो पहले श्रीनारायणके सोलह पार्षदोंकी चर्चा अनिवार्य हो जाती है। इसलिये भक्तमालकार नाभाजी कहते हैं –

॥ ८ ॥

**मो चित्तबृत्ति नित तहँ रहो जहँ नरायनपारषद॥**
**विष्वक्सेन जय बिजय प्रबल बल मंगलकारी।**
**नन्द सुनंद सुभद्र भद्र जग आमयहारी॥**
**चंड प्रचंड बिनीत कुमुद कुमुदाच्छ करुनालय।**
**सील सुसील सुषेन भाव भक्तन प्रतिपालय॥**

**लक्ष्मीपति प्रीनन प्रबीन भजनानंद भक्तन सुहृद।**
**मो चित्तबृत्ति नित तहँ रहो जहँ नरायनपारषद॥**

**मूलार्थ** – अर्थात् मेरी चित्तवृत्ति वहींपर निरन्तर निवास करे, जहाँ भगवान् श्रीमन्नारायण विष्णुजीके सोलह पार्षद विराजते रहते हैं। उनमेंसे श्रीविष्वक्सेन, श्रीजय, श्रीविजय, श्रीप्रबल और श्रीबल – ये मङ्गलकारी पार्षद हैं। श्रीनन्द, श्रीसुनन्द, श्रीसुभद्र, और श्रीभद्र – ये जगत्के आमय अर्थात् रोगोंको हरने वाले हैं। श्रीचण्ड, श्रीप्रचण्ड, श्रीकुमुद और श्रीकुमुदाक्ष – ये विनम्र और करुणाके घर हैं। श्रीशील, श्रीसुशील और श्रीसुषेण – ये भावसे भगवद्भजन करने वाले भक्तोंका प्रतिपालन करते रहते हैं।

इस प्रकार (१) **विष्वक्सेन** (२) **जय** (३) **विजय** (४) **प्रबल** (५) **बल** (६) **नन्द** (७) **सुनन्द** (८) **सुभद्र** (९) **भद्र** (१०) **चण्ड** (११) **प्रचण्ड** (१२) **कुमुद** (१३) **कुमुदाक्ष** (१४) **शील** (१५) **सुशील** (१६) **सुषेण** – ये सोलहों पार्षद लक्ष्मीजीके पति भगवान् नारायणके **प्रीनन** अर्थात् उन्हें प्रसन्न करनेमें कुशल हैं, निरन्तर भगवान्को प्रसन्न करते रहते हैं, और भजनमें आनन्द लेनेवाले भक्तोंके ये सुहृद् हैं। ऐसे सोलहों नारायण-पार्षद जहाँ विराज रहे हों, वहाँ मेरी चित्तवृत्ति निरन्तर निवास करती रहे।

विष्वक्सेन प्रथम आचार्य हैं और भगवान्के प्रथम पार्षद हैं। जय और विजय – ये भगवान्के प्यारे द्वारपाल हैं, जिनके लिये कहा जाता है –

**द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥**

(मा. १.१२२.४)

यहाँ एक बात विशेष ध्यान देनेकी है, वह यह कि ये पार्षद कभी भी भगवान्से दूर नहीं होते। जय-विजय भी एक रूपमें सनकादिका शाप स्वीकार करके एक जन्ममें हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, द्वितीय जन्ममें रावण-कुम्भकर्ण और तृतीय जन्ममें शिशुपाल-दन्तवक्रके रूपमें उपस्थित रहे। पर दूसरे रूपमें वे निरन्तर भगवान्की सेवामें ही रहे, ये कभी सेवासे दूर नहीं होते। इसलिये विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल और बल – ये सब मङ्गल ही करते रहते हैं। नन्द, सुनन्द, सुभद्र, भद्र – ये चारों जगत्के काम, क्रोध, लोभ, मोहसे उत्पन्न **आमय** अर्थात् रोगोंको दूर करते रहते हैं। चण्ड और प्रचण्ड नामसे भयंकर प्रतीत होते हैं, पर स्वभावसे बहुत विनीत हैं। कुमुद और कुमुदाक्ष – ये करुणाके आगार हैं। शील, सुशील और सुषेण भावुक भक्तोंका निरन्तर प्रतिपालन करते रहते हैं।

अब नाभाजी हरिवल्लभोंकी प्रार्थना कर रहे हैं –

॥ ९ ॥

**हरिबल्लभ सब प्रारथों जिन चरनरेनु आसा धरी॥**
**कमला गरुड सुनंद आदि षोडस प्रभुपदरति।**
**( हनुमंत ) जामवंत सुग्रीव बिभीषन सबरी खगपति॥**
**ध्रुव उद्धव अंबरीष बिदुर अक्रूर सुदामा।**
**चंद्रहास चित्रकेतु ग्राह गज पांडव नामा॥**
**कौषारव कुंती बधू पट ऐंचत लज्जाहरि।**
**हरिबल्लभ सब प्रारथों जिन चरनरेनु आसा धरी॥**

**मूलार्थ** – मैं उन भागवतोंकी प्रार्थना कर रहा हूँ, जो श्रीहरिको प्रिय हैं, और श्रीहरि जिनको प्रिय हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीहरिकी चरणरेणुको प्राप्त करनेके लिये आशा धारण की है, और मैंने अर्थात् नारायणदास नाभाने भी जिन भक्तोंके श्रीचरणोंकी धूलको प्राप्त करनेके लिये अपने जीवनमें आशा धारण की है, आशा लगाए बैठा हूँ कि कभी-न-कभी मुझे इनके चरणोंकी धूल प्राप्त हो ही जाएगी।

ये हैं – (१) कमला **श्रीलक्ष्मीजी** (२) **गरुडजी** (३) **सुनन्द** आदि भगवान्के सोलह पार्षद (४) **श्रीहनुमान्जी** (५) **श्रीजाम्बवान्जी** (६) **श्रीसुग्रीवजी** (७) **श्रीविभीषणजी** (८) **माँ शबरीजी** (९) खगपति पक्षिराज **श्रीजटायुजी** (१०) **श्रीध्रुवजी** (११) **श्रीउद्धवजी** (१२) **श्रीअम्बरीषजी** (१३) **श्रीविदुरजी** (१४) **श्रीअक्रूरजी** (१५) **श्रीसुदामाजी** (१६) **श्रीचन्द्रहासजी** (१७) **श्रीचित्रकेतुजी** (१८) **ग्राह** और (१९) **गजेन्द्र** तथा (२०) पाण्डवनामसे प्रसिद्ध पाँचों **पाण्डुपुत्र** (श्रीयुधिष्ठिर, श्रीभीम, श्रीअर्जुन, श्रीनकुल, और श्रीसहदेवजी), एवं (२१) **कौषारव** अर्थात् कुषारव मुनिके पुत्र **श्रीमैत्रेयजी** (२२) भगवती माँ **कुन्तीजी** और (२३) कुन्तीजीकी आज्ञासे अपनी जीवनचर्या चलाने वालीं **द्रौपदीजी** जिनके वस्त्रको दुःशासन द्वारा खींचते समय प्रभु श्रीकृष्ण भगवान्ने जिनकी जाती हुई **लज्जा आहरि** अर्थात् लज्जा लौटा दी थी – ऐसे श्रीहरिवल्लभोंसे मैं प्रार्थना करता हूँ, कि आप दया करें, मुझपर कृपा करें, भगवत्प्रेमामृत प्रदान करें।

**लक्ष्मीजी**के संबन्धमें तो हम सभी जानते हैं कि वे भगवान्‌के चरणकी सेवा ही करती रहती हैं, और कुछ भी नहीं करना चाहतीं। उनके लिये भागवतका यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है –

**ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः।**
**सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता॥**

(भा.पु. १.१६.३२)

अर्थात् ब्रह्मा आदि देवता जिन भगवती लक्ष्मीके कृपा-कटाक्ष-मोक्षकी कामना करते हुए भगवत्प्रपन्न होनेपर भी बहुत काल तक तपस्या किये, फिर भी लक्ष्मीजीने उन्हें एक भी बार टेढ़ी दृष्टिसे भी नहीं देखा, अर्थात् नेत्रके कोनेसे भी नहीं देखा, वही लक्ष्मीजी अपने निवास रूप कमलवनको छोड़कर अनुरक्त भावसे जिन प्रभुके चरणकमलके सौन्दर्यका ही भजन करती रहती हैं – अन्य देवपत्नियाँ अपने भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगती हैं, जैसे पार्वतीजी भी गृहस्थ-धर्मका पालन करती हैं, दोनों बेटोंकी सम्भाल और शिवजीकी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंमें पार्वतीजी लगती हैं, ये कभी क्रोध भी करती हैं, युद्ध भी करती हैं – परन्तु लक्ष्मीजीको हमने-आपने कभी युद्ध करते नहीं देखा होगा, क्योंकि उनको भगवान्‌के चरणकी सेवासे ही कभी समय नहीं मिलता, उनके चरणका लालन ही करती रहती हैं लक्ष्मीजी।

**गरुड** भगवान् नारायणके वाहन हैं और ये ही अन्ततोगत्वा भगवान् रामको मेघनाद द्वारा नागपाशमें बँधे देखकर भ्रमित हो जाते हैं। फिर भुशुण्डिजीके चरणोंमें जाकर वे अपना भ्रम दूर करते हैं, और भुशुण्डिजीके श्रीमुखसे श्रीरामकथाके ८४ प्रसंगोंका श्रवण करते हैं। और गरुड मुक्तकण्ठसे कहते हैं –

**गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।**
**भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥**

(मा. ७.६८क)

ये ही गरुडदेव संपूर्ण रामकथा सुननेके पश्चात् उपासनामें थोड़ा अन्तर करते हुए प्रतीत होते हैं। अपनी पीठपर तो वे भगवान् नारायणको विराजमान कराते हैं उनके वाहन बनकर और हृदयमें भगवान् रामको विराजमान कराते हैं –

**तासु चरन सिर नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।**
**गयउ गरुड बैकुंठ तब हृदय राखि रघुबीर॥**

(मा. ७.१२५क)

**सुनन्द** आदि भगवान् नारायणके सोलह पार्षद हैं, जिनकी चर्चा इससे पूर्व छप्पयमें की जा चुकी है।

**श्रीहनुमान्‌जी**की चर्चा कौन नहीं जानता? वही एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो भगवान्‌की बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनों सेवाएँ करना जानते हैं। वे भगवान्‌से दूर रहकर भी भगवद्भजन करते हैं और निकट रहकर भी, और उनके लिये वियोग और संयोग दोनों समान होते हैं। इसलिये हनुमान्‌जी जैसी प्रीति और हनुमान्‌जी जैसी सेवा किसीके वशकी नहीं है, एक साथ दोनों। सेवा लक्ष्मण कर सकते हैं, प्रीतिका निर्वहण भरत कर सकते हैं, पर दोनों निर्वहण तो हनुमान्‌जी ही करना जानते हैं, इसलिये कहा गया –

**हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥**
**गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥**

(मा. ७.५०.८-९)

हनुमान्‌जीके संबन्धमें यह कहा जाता है कि जब भगवान् श्रीरामके द्वारा सीताजीको यह कहा गया कि आप जिसको चाहें उसे हार दे दें, तो सीताजीने हनुमान्‌जीको अपना हार दे दिया। और यहाँ लोगोंका कहना है कि हनुमान्‌जीने उसकी सारी मणियाँ तोड़कर नीचे गिराईं। जब लोगोंने पूछा – "इतने बहुमूल्य हारको आपने क्यों तोड़ डाला?" तब हनुमान्‌जीने कह दिया – "इसमें रामनाम नहीं है।" तब लोगोंने कहा – "तो क्या आपके हृदयमें रामनाम है?" तब उन्होंने अपनी छाती चीरकर दिखा दी। यह उक्ति सुननेमें रोचक लगती है, परन्तु इसका हमें अभी कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है। और यह भी मानना ठीक नहीं होगा कि सीताजी द्वारा दिया हुआ वह हार रामनाममय न हो। यह आख्यान कुछ अतिरञ्जना जैसा लगता है, अतिशयोक्ति जैसा लगता है। इसलिये मेरा तो यहाँ यही निवेदन है कि हनुमान्‌जीकी भक्तिके लिये अनेक उद्धरण वाल्मीकीय रामायण, रामचरितमानस, महाभारत और किं बहुना वाल्मीकि द्वारा लिखित सौ करोड़ रामायणोंमें पर्याप्त रूपसे वर्णित हैं, तो हनुमन्तलालजीके संबन्धमें तो कुछ भी और कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है।

**जाम्बवान्** – ये परम भागवत हैं और भगवान्‌के प्रति इनकी अत्यन्त भक्ति है। स्वयं ब्रह्माजी ही

तो जाम्बवान्‌के रूपमें आए। शिवजी हनुमान्‌जी बनकर और ब्रह्माजी जाम्बवान् बनकर। गोस्वामीजी कहते हैं –

**जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।**
**पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥**

(दो. १४३)

वही जाम्बवान् श्रीरामको जब मिलते हैं, समय-समयपर भगवान्‌के कार्यमें पूर्ण सहायता करते हैं। अङ्गदको विचलित हुआ देखकर जाम्बवान् उन्हें भगवत्कथा सुनाकर एक बहुत मङ्गलमय सिद्धान्तको प्रस्तुत करते हैं। जाम्बवान् कहते हैं – "अङ्गद! तुम समझ नहीं रहे हो। हम सभी सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो सतत सगुण साकार ब्रह्म श्रीरामजीके चरणोंमें अनुराग रखते हैं। भगवान् अपनी इच्छासे और अपने भक्तोंकी इच्छाका पालन करनेके लिये पृथ्वी, देवता, गौ, ब्राह्मणके हितके लिये अवतार लेते हैं, और जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं, तब-तब हम सगुणोपासक भक्तजन मोक्ष-सुखको त्यागकर प्रभुके अवतारकालमें उनकी लीलाके उपकरण बन जाते हैं," –

**हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥**
**निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।**
**सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सुख त्यागि॥**

(मा. ४.२६.१३-४.२६)

जाम्बवान् द्वापर तक भगवान्‌की सेवामें रहते हैं और अन्ततोगत्वा स्यमन्तक मणिके सन्दर्भमें गुफामें प्रविष्ट हुए भगवान् श्रीकृष्णसे तुमुल युद्ध करके उन्हें श्रीराम रूपमें पहचान कर उनसे क्षमा माँगते हैं और त्रेतासे भगवान्‌की प्रतीक्षा कर रहीं और तपस्या कर रहीं अपनी प्रिय पुत्री जाम्बवतीजीको भगवान्‌को सौंप देते हैं।

**सुग्रीव** – ये भगवान्‌के अन्तरङ्ग सखा हैं। सूर्यनारायण ही भगवान्‌की सेवा करनेके लिये सुग्रीवके रूपमें प्रकट, प्रस्तुत हुए हैं। सुग्रीव ही तो कहते हैं –

**अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥**

(मा. ४.७.२१)

**विभीषणजी**का तो कहना ही क्या! ये तो परम भागवत हैं ही। रावणके अत्याचारसे खिन्न होकर भगवान्‌की शरणमें आते हैं। परन्तु इससे पहले भी तो जब ब्रह्माजीने रावण, कुम्भकर्ण, और

विभीषणजीके पास जाकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे वरदान माँगनेके लिये उन्हें प्रेरित किया था, तब दोनों भाइयोंने भिन्न-भिन्न वरदान माँगे, परन्तु विभीषणने तो ब्रह्माजीसे भगवान् श्रीरामके चरण-कमलमें निर्मल अनुराग ही माँगा –

**गएउ बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु।**
**तेहिं माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥**

(मा. १.१७७)

यही विभीषण हनुमान्‌जीसे कहते हैं –

**सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी॥**
**तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा॥**

(मा. ५.७.१-२)

परम भागवत विभीषण समराङ्गणमें प्रेमकी अधिकताके कारण जब माधुर्य-भावसे भावित होकर प्रभु श्रीरामके प्रति सन्देह कर बैठते हैं कि आपके पास युद्धके उपकरण नहीं हैं, आप कैसे रावणको जीत पाएँगे? तब भगवान् विभीषणको धर्मरथका उपदेश करते हैं।

**माँ शबरी** क्या ही विलक्षण महिला हैं! भले ही वह भिल्लकुलमें उत्पन्न हुई हों, कोई वैदिक संस्कारके उनको अधिकार न मिले हों, परन्तु इतना तो है कि भगवान् श्रीरामने उन्हें माँका गौरव दिया, माँ माना। **भामिनी** शब्द माताके लिये पहले ही प्रयुक्त हुआ है। कपिलदेवने देवहूतिको भागवतमें भामिनी कहा –

**भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।**
**स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥**

(भा.पु. ३.२९.७)

हनुमान्‌जीने वाल्मीकीय रामायणमें सीताजीको भामिनी कहा –

**रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।**
**मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः॥**

(वा.रा. ५.३५.११)

इसी प्रकार भगवान् रामने शबरीजीको मानसमें तीन बार भामिनी कहा –

**कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥**

(मा. ३.३७.४)

**सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे।**

(मा. ३.३८.७)

**जनकसुता कइ सुधि भामिनी।**

(मा. ३.३८.१०)

शबरीको प्रभुका मातृस्नेह प्राप्त हुआ, माता बनाया भगवान्‌ने शबरीको। भावुकजन विशेष जाननेके लिये मेरे द्वारा रचित **माँ शबरी** ग्रन्थ पढ़ें।

**खगपति** अर्थात् **जटायुजी** – यही खगोंमें श्रेष्ठ हैं। यद्यपि **खगपति** शब्दसे गरुड अभिहित होते हैं, परन्तु भक्तमालकारने खगपति जटायुजीको ही कहा, सबसे श्रेष्ठ यही हैं, यही पक्षिराज हैं, जिन्हें परमात्माने अपना पिता बनाया और दशरथजीसे दशगुनी अधिक भक्तिसे युक्त होकर भगवान्‌ने जटायुजीका दाहसंस्कार अपने ही हाथसे किया –

**दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु करि काजु।**
**सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराजु॥**

(दो. २२७)

श्रीरामने जटायुको गोदमें लिया – ऐसे परमभक्त जटायु, जिन्होंने भगवान्‌से कुछ नहीं माँगा और एक बात कह दी – पिताकी मर्यादामें मुझे भी तो रहना पड़ेगा। आपके जीवनमें दो पिता आए – चक्रवर्ती महाराज दशरथ और मैं जटायु। दशरथजी पुत्र वियोगमें अपने प्राण त्याग सकते हैं, तो मैं भी पुत्रवधूके वियोगमें अपने प्राण त्याग दूँगा, उन सीताजीकी रक्षा मैं नहीं कर पाया। जटायुके लिये ही शुकाचार्यने श्रीरामके संबन्धमें **प्रियविरहरुषा** (भा.पु. ९.१०.४) कहा। **प्रियविरहरुषा**का तात्पर्य है **प्रियेण जटायुषा विरहः प्रियविरहः तेन रुट् प्रियविरहरुट् तया प्रियविरहरुषा**। अर्थात् अपने अत्यन्त प्रिय पिता श्रीजटायुसे जब वियोग हुआ, तब भगवान् रामको क्रोध आ गया और उन्होंने रावणके वधकी प्रतिज्ञा कर ली।

इसके पश्चात् **ध्रुव** जिन्हें पाँच वर्षमें ही दर्शन देनेके लिये भगवान्‌को एक नया अवतार सहस्रशीर्षावतार लेना पड़ा –

**त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्।**
**सहस्त्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥**

(भा.पु. ४.९.१)

ऐसे ध्रुव।

**उद्धव** – जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके परम मित्र हैं, उनके लिये कहा जाता है –

**वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।**
**शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः॥**

(भा.पु. १०.४६.१)

**अम्बरीष** – इनकी चर्चा भागवतमें नवम स्कन्धमें चौथे और पाँचवें अध्यायमें की गई है। चरणामृतका महत्त्व ख्यापित करनेके लिये महर्षि दुर्वासा पारणाकी अवधिका उल्लङ्घन करके अम्बरीषके पास आए, तब तक अम्बरीषजीने वसिष्ठजीके अनुरोधसे भगवान्का चरणामृत लेकर पारणा कर ली थी। कुपित होकर दुर्वासाने कृत्याका प्रयोग किया, जो सुदर्शन चक्र द्वारा विफल किया गया, और सुदर्शन चक्रने दुर्वासाका पीछा किया। सर्वत्र भ्रमण करनेपर भी जब दुर्वासाकी कहींसे रक्षा नहीं हो सकी, तो भगवान् नारायणने कह दिया कि तुम अम्बरीषके पास जाओ, वहीं तुम्हारी रक्षा सम्भव है। दुर्वासा अम्बरीषके पास आए और अम्बरीषसे प्रार्थना कर ली, दुर्वासाकी रक्षा हो गई। अन्यत्र तो दुर्वासाने कोप करके अम्बरीषको दस जन्मका शाप दिया तो भगवान्ने अम्बरीषके शापको स्वयं स्वीकार करके दशावतार स्वीकार कर लिया –

**अम्बरीष हित लागि कृपानिधि सो जन्मे दस बार।**

(वि.प. ९८.५)

**विदुर** – जो व्यासजीके संकल्पसे विचित्रवीर्यकी एक दासीके गर्भसे जन्मे। मुनि माण्डव्यके शापसे स्वयं यमराज ही विदुर बनकर आए थे। उनकी प्रीतिका वर्णन तो तब स्पष्ट हो जाता है, जब भगवान् कृष्ण दुर्योधनको समझानेके लिये दूत बनकर हास्तिनपुर आते हैं, और वहाँ दुर्योधनका आमन्त्रण ठुकराकर भगवान् विदुरजीके यहाँ जाकर केलेका छिलका और बथुएका साग खाते हैं। प्रसिद्ध ही है – **दुर्योधन घर मेवा त्यागे साग विदुर घर खाए**। इनका विशेष चरित्र जाननेके लिये मेरे द्वारा लिखा हुआ **काका विदुर** नामक खण्डकाव्य पढ़िये।

**अक्रूर** – ये भगवान्के परम अन्तरङ्ग हैं। कंसके द्वारा जब इन्हें भेजा गया, इनके मनका एक

मनोरथ था – **मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः** (भा.पु. १०.३८.२१)। एक बार भगवान् मुझे काका कह दें, मैं धन्य हो जाऊँगा। भगवान्ने वैसा ही किया। श्रीव्रजभूमिमें भगवान्के चरणोंसे अङ्कित चरण-रेखाओंको देखकर अक्रूरके मनमें जो उद्गार प्रकट हुआ, वह तो देखते ही बनता है –

**पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः।**
**ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः॥**
**तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः।**
**रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति॥**

(भा.पु. १०.३८.२५-२६)

भागवतजीके दशम स्कन्धके अड़तीसवें अध्यायका यह प्रकरण देखने ही लायक है। अक्रूरने श्रीव्रजमें भगवान्के चरणचिह्नोंके दर्शन किये। उससे उनके मनमें सात्त्विक भाव जगा, रोमाञ्च हो उठा, और अश्रुपात होने लगा। अक्रूर रथसे लुढ़ककर व्रजभूमिकी उस धूलिमें लोटने लगे, जिसे आज रमण-रेती कहा जाता है।

**सुदामा** – भगवान् श्रीकृष्णके विद्यार्थी-मित्र हैं। दोनों विद्याध्ययन करके अपने-अपने प्रवृत्तमें संलग्न हुए। प्रभु द्वारकाधीश बन बैठे और सुदामाजीको लक्ष्मीजीकी बड़ी बहनने वरण कर लिया अर्थात् वे दरिद्र हो गए, दरिद्रापति हो गए। एक दिन सुदामाजीकी धर्मपत्नीने यह कहा – "यदि भगवान् आपके मित्र हैं तो आप उनके पास जाएँ, वे आपको बहुत सा धन देंगे।" सुदामाने जब धनके प्रति अनिच्छा व्यक्त की तो सुशीलाजीने कहा – "तो आप दर्शनके लिये तो उनके पास जा ही सकते हैं।" द्वारकाधीशके पास सुदामाजी आए। द्वारकाधीशजीने उनका बहुत सम्मान किया, गले मिले और उनके चरणोंको अपने हाथसे धोया। क्या ही नरोत्तमदासने कहा है –

**ऐसे बेहाल बेवाइन ते पद कंटक जाल लगे पुनि जोये।**
**हाय महादुख पायो सखा तुम आये इतै न किते दिन खोये॥**
**देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिके करुनानिधि रोये।**
**पानि परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सौं पग धोये॥**

सुदामाजीका चरित्र भागवतजीके दशम स्कन्धके ८०वें और ८१वें अध्यायोंमें उपनिबद्ध है, अद्भुत झाँकी है। यद्यपि भागवतजीमें इनका सुदामा नाम नहीं लिखा है, परन्तु अन्य पुराणोंसे यह नाम स्पष्ट हो जाता है। स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें सत्यनारायण-व्रतकथामें स्पष्ट लिखा ही गया है –

**शतानन्दो महाप्राज्ञः सुदामा ब्राह्मणो बभूव।**

(स्क.पु.रे.ख.स.क. ५.१९)

**चन्द्रहास** – इनकी कथा महाभारतके जैमिनीयाश्वमेधयज्ञ पर्वमें लिखी गई है। क्या व्यक्तित्व है चन्द्रहासका! जन्मसे ही पिता-माताका वियोग हुआ, अनाथवत् भ्रमण करते रहे। एक दिन कुन्तलपुर राज्यके मन्त्री धृष्टबुद्धिके यहाँ प्रीतिभोजमें चन्द्रहास भी आ गए। ज्योतिषियोंने कह दिया कि यही निष्किञ्चन बालक धृष्टबुद्धिकी बेटीका पति बनेगा। धृष्टबुद्धिने उन्हें मारनेके लिये वधिकोंको आदेश दिया। चन्द्रहास नारदजी द्वारा दिये हुए शालग्रामजीकी सेवा किया करते थे और फिर अपने मुखमें रख लेते थे। उस दिन भी उन्होंने यही किया। वधिकोंसे कहा – "पहले मुझे शालग्रामकी सेवा कर लेने दो, फिर मुझे मार डालना।" भावनासे सेवा की और तब यह कहा – "प्रभु! आज यह अन्तिम सेवा है।" सेवा करके मुखमें भर लिया और वधिकोंको चरणामृत दिया। वधिकोंकी बुद्धि बदल गई, उन्होंने केवल चन्द्रहासजीकी छठी उँगली काटकर धृष्टबुद्धिको दिखा दिया। संयोगसे चन्दनावतीके राजा इन्हें अपने घर ले आए, वे निःसंतान थे, उन्होंने इनको राजा बना दिया। और अब तो कुन्तलपुरको कर देना क्या, चन्द्रहास स्वयं राज्य करने लगे। धृष्टबुद्धि कुन्तलपुर आया, उसने उन्हें देखा, पहचान गया, यह तो वही बालक है। अन्तमें उसने इनसे कहा – "मैं थोड़ा यहाँ विश्राम करूँगा, तुम मेरे पुत्रको जाकर यह सन्देश दे आओ।" एक श्लोक लिखा –

**विषमस्मै प्रदातव्यं त्वया मदन शत्रवे।**
**कार्याकार्यं न द्रष्टव्यं कर्तव्यं खलु मे प्रियम्॥**

अर्थात् हे मदनसेन! इस शत्रुको तुम विष दे देना – **विषमस्मै प्रदातव्यं** यह पत्र लिखकर दिया। चन्द्रहास कुन्तलपुरके निकट एक बागमें आकर भगवान्‌की सेवा करके थोड़ा-सा विश्राम करने लगे। संयोगसे धृष्टबुद्धिकी पुत्री विषया वहाँ आई, चन्द्रहासके सौन्दर्यको देखकर वह मुग्ध हुई। सहसा उसकी दृष्टि पड़ गई चन्द्रहासकी पगड़ीपर, जिसमें यह पत्र रखा था। उसने कौतूहलवशात् यह पत्र निकालकर पढ़ा कि अरे! मेरे पिताने इस युवकको विष देनेको कह दिया? अपनी आँखके काजलसे 'म'को उसने 'या' बना दिया, और प्रदातव्यंके स्थानपर प्रदातव्या कर दिया अर्थात् **विषयास्मै प्रदातव्या** कर दिया जिसका अर्थ हुआ – हे मदनसेन! इस युवकको तुम मेरी विषया नामक कन्या दे देना। मदनसेनको चन्द्रहासने वह पत्र दिया। मदनसेन प्रसन्न हुए। विवाहका आयोजन हुआ और अपनी बहनको उन्होंने प्रेमपूर्वक चन्द्रहासजीको प्रदान कर दिया। संयोगसे थोड़े दिनके पश्चात् जब धृष्टबुद्धि आया, तो यहाँ

तो कुछ परिस्थिति ही बदल गई थी। चन्द्रहास धृष्टबुद्धिके जामाता बन गए थे। उसने मदनसेनसे पूछा तो मदनसेनने कह दिया – "आपने पत्रमें यही लिखा है।" पत्र दिखा दिया, उसे आश्चर्य हुआ – कोई बात नहीं! अन्तमें उसने कुछ वधिकोंको कहा कि आज जो देवीपूजनमें आए उसका वध कर देना और चन्द्रहाससे कह दिया – "आप अकेले जाकर देवी पूजन कर आइये।" चन्द्रहासको क्या? ये तो चल पड़े। उधर कुन्तलपुरके राजाने भी यह कह दिया कि मेरे पास कोई सन्तान नहीं है, अब मैं यह राज्य चन्द्रहासको सौंपना चाहता हूँ। मदनसेनसे कहा कि तुम तुरन्त जाकर अपने जीजाको राजसभामें ले आओ। मदनसेन आए और उन्होंने कहा – भगवन्! आप कुन्तलपुरकी राजसभामें पधारें, आपका राज्याभिषेक होगा। आपके स्थानपर मैं ही देवी-पूजन कर लेता हूँ। धृष्टबुद्धिके निर्देशानुसार वधिकोंने वही किया। उनको क्या पता था कि जो देवी-पूजन करने आया वह चन्द्रहास है या मदनसेन। वधिकोंने मदनसेनकी हत्या कर दी। यह समाचार जब धृष्टबुद्धिको मिला, तो उसने भी छातीपर पत्थर मारकर अपनी हत्या कर ली। अन्तमें चन्द्रहासजीने देवीके समक्ष स्वयं तलवार लेकर अपनी हत्या करनी चाही, तो देवीजीने रोका। तब चन्द्रहासजीने कहा कि इन दोनोंको जिला दिया जाए। जिला दिया, इसपर गोस्वामी तुलसीदासजीने तुलसी सतसईमें एक दोहा लिखा –

**जाके पग नहि पानही ताहि दीन्ह गजराज।**
**तुलसी एते जानिए राम गरीबनिवाज॥**

(तु.स.)

चन्द्रहासके पश्चात् **चन्द्रकेतुजी**की कथा भागवतजीके षष्ठ स्कन्धमें प्रसिद्ध ही है। **ग्राह** और **गज**की कथा भी भागवतजीके अष्टम स्कन्धमें प्रथमसे लेकर चतुर्थ अध्याय तक बहुत व्यापक रूपमें कही गई है। और **पाण्डवों**की कथा संपूर्ण महाभारतमें प्रसिद्ध ही है। पाण्डवोंके लिये एक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है –

**धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन**
**शत्रुर्विनश्यति वृकोदरकीर्तनेन।**
**तेजोविवर्धति धनञ्जयकीर्तनेन**
**माद्रीसुतौ कथयतां न भयं नराणाम्॥**

(पा.गी. २)

युधिष्ठिरजीका संकीर्तन करनेसे धर्म बढ़ता है, भीमजीका संकीर्तन करनेसे शत्रुओंका नाश होता है,

अर्जुनजीका संकीर्तन करनेसे तेजोवृद्धि होती है और माद्रीपुत्रोंका स्मरण करनेसे मनुष्य अभय हो जाता है। इस प्रकार पाण्डव धन्य हैं, जिनके लिये भगवान् क्या-क्या नहीं करते? कभी दूत बन जाते हैं, कभी सूत बन जाते हैं, कभी मन्त्री बन जाते हैं। स्वयं भागवतजीके सप्तम स्कन्धके दशम अध्यायके ४८वें श्लोकमें प्रह्लाद कथाका उपसंहार करते हुए नारदजी कहते हैं कि पाण्डवों! इस संसारमें आप लोग बहुत भाग्यशाली हैं। आप लोगोंके घरमें साक्षात् भगवान् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने ऐश्वर्यको छिपाकर मनुष्य रूपमें विराज रहे हैं। आप उन्हें देख रहे हैं, जिन्हें योगी लोग ध्यानमें नहीं पाते। वे ही आज आपके राजसूय यज्ञमें नाई बनकर जूठन उठा रहे हैं और ब्राह्मणोंका चरण-प्रक्षालन कर रहे हैं –

**यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।**
**येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्॥**

(भा.पु. ७.१०.४८)

**कौषारव** अर्थात् **मैत्रेय**। मैत्रेयजीके पिताका नाम है **कुषारव**, उनके पुत्र होनेसे इन्हें कहते हैं **कौषारव**। कौषारव वेदव्यासजीके मित्र हैं और गोलोक प्रस्थान करते समय भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको यह संकेत किया था कि वे विदुरजीसे जाकर कहें कि मैत्रेयजीसे ही वे भागवतजी जाकर श्रवण कर लें।

**कुन्ती** – ये भगवान् श्रीकृष्णकी बुआ हैं। परन्तु इनकी रीति विलक्षण है, सब तो भगवान्से संपत्ति माँगते हैं, और इन्होंने भगवान्से विपत्ति माँगी –

**विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।**
**भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥**

(भा.पु. १.८.२५)

हे प्रभु! आप हमें निरन्तर विपत्ति ही दीजिए, जिससे आपके दर्शन होते रहें। यही कुन्ती हैं, जिन्होंने अर्जुनके मुखसे जब भगवान्का लीलासंवरण सुना और उनकी गोलोकयात्रा सुनी, तुरन्त अपने प्राण छोड़ दिए। यथा –

**पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम्।**
**एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः॥**

(भा.पु. १.१५.३३)

**कुन्तीवधू** – द्रौपदीजीके लिये भक्तमालकार **कुन्तीवधू** इसलिये कहते हैं कि ये कुन्तीकी वास्तविक पुत्रवधू हैं। कुन्तीके ही अनुरोधपर इन्होंने पाँच पतियोंको स्वीकारा, सब कुछ अपना मिटा डाला, लौकिक कलङ्क सहा, कर्णके व्यङ्ग्यवचन सहे – यह सब केवल कुन्तीजीके कारण। इसलिये इन्हें कुन्तीवधू कहा गया। **पट ऐंचत लज्जाहरि**में **लज्जाहरि** शब्दमें **लज्जा आहरि** – यह पदच्छेद समझना चाहिये, अर्थात् जब दुःशासन द्रौपदीजीके वस्त्रोंको खींच रहा था, तब भगवान्ने उनकी लज्जाका आहरण किया अर्थात् लज्जा लौटा ली।

ऐसे जो श्रीहरिको प्रिय हैं और जिनको श्रीहरि प्रिय हैं, उनसे नाभाजी प्रार्थना करते हैं – **जिन चरनरेनु आसा धरी**, जिन्होंने भगवान्के चरण-कमलकी धूलिको प्राप्त करनेके लिये अपनी आशा धारण की अर्थात् जीवन-यात्रा सतत रखी है कि कभी-न-कभी चरणधूलि मिलेगी, और **जिन चरनरेनु आसा धरी**, नाभाजी कहते हैं कि इन्हीं हरिवल्लभोंके चरण-कमलकी धूलिको प्राप्त करनेके लिये मैंने भी अपने जीवनकी आशा धारण की है कि कभी-न-कभी इनकी चरण-धूलि मिलेगी।

॥ १० ॥

**पदपंकज बाँछौं सदा जिनके हरि उर नित बसैं॥**
**जोगेस्वर श्रुतदेव अंग मुचकुंद प्रियव्रत जेता।**
**पृथू परीच्छित शेष सूत शौनक परचेता॥**
**सुतरूपा त्रिसुता सुनीति सती सबहि मदालस।**
**जज्ञपत्नी ब्रज नारि किये केसव अपने बस॥**
**ऐसे नर नारी जिते तिनहीके गाऊँ जसैं।**
**पदपंकज बाँछौं सदा जिनके हरि उर नित बसैं॥**

**मूलार्थ** – मैं उनके चरण-कमलोंको सदा इच्छाका विषय बनाता रहता हूँ अर्थात् उनके चरण-कमलोंकी सेवा करनेके लिये इच्छा करता रहता हूँ जिनके हृदयमें हरि अर्थात् श्रीनाथ भगवान् निरन्तर निवास करते हैं। जैसे **नवयोगेश्वर** (कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, करभाजन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और पिप्पलायन), **श्रुतिदेव** (मैथिलब्राह्मण जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके पधारनेपर तन्मयतामें अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था), **अङ्ग** (जो वेनके अत्याचारसे घर छोड़कर परिव्राजक बन गए थे), **मुचुकुन्द** (जिनको शयनमुद्रामें वर्तमान जानकर भगवान्ने जाकर स्वयं दर्शन दिया था, जब

मुचुकुन्दकी क्रोधाग्निसे कालयवन जल गया था), और विजयी **प्रियव्रत** – जिनकी चर्चा मानसकारने स्वयं की है –

**लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रशंसहिं जाही॥**

(मा. १.१४२.४)

इसी प्रकार **महाराज पृथु**, **महाराज परीक्षित्**, पृथ्वीका भार वहन करनेवाले **शेषजी**, पुराणके वक्ता और रोमहर्षणके पुत्र **सूतजी**, पुराणके प्रश्नकर्ता अट्ठासी हजार ऋषियोंके कुलपति **शौनकजी**, और **प्राचीनबर्हि** नामसे प्रसिद्ध बर्हिषद्के दस पुत्र प्रचेतागण, महारानी **शतरूपा** (स्वायम्भुव मनुकी धर्मपत्नी), उनकी तीनों पुत्रियाँ (**आकूति**, **देवहूति** और **प्रसूति**), **सुनीति** (शतरूपाजीकी प्रथम पुत्रवधू, उत्तानपादकी धर्मपत्नी और ध्रुवकी माता) और सभी **सतियाँ** (भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी पतिव्रताएँ), स्वयं **मदालसा** (ऋतध्वजकी पत्नी और विश्वावासु गन्धर्वकी पुत्री) जिन्होंनेयह प्रतिज्ञा की थी कि उनके गर्भमें जो बालक आ जाएगा वह दुबारा गर्भमें नहीं आएगा, **यज्ञपत्नियाँ**, और **श्रीव्रजाङ्गनाएँ** जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया था। इनके चरण-कमलकी सेवा मुझे अभीष्ट है। ऐसे जितने भी नर-नारी हैं, उनके यशको मैं सतत गाता रहूँ और उनके चरण-कमलोंका निरन्तर मैं सेवाभिलाष धारण करूँ अर्थात् उनकी चरण-रेणुकी प्राप्तिकी आशा मेरे लिये सदैव बनी रहे, जिनके हृदयमें श्रीहरि निरन्तर निवास करते हैं। इस छप्पयमें नाभाजीने जिन महाभागवतोंकी चर्चा की है उनके हृदयमें प्रभु निरन्तर निवास करते ही हैं।

यहाँ **सती** शब्द दक्षपुत्री और शङ्करपत्नी सतीके अर्थमें नहीं प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि दक्षपुत्री सती भगवदीया नहीं थीं। वे तो भगवान्पर संशय करके अपने जीवनको संशयारूढ़ बना चुकी थीं। अतः उनमें भगवद्यशोगानकी पात्रता ही नहीं है। अतः मैं इन सभी परिकरोंके चरणकमलोंकी सेवाके लिये सदैव इच्छा करता रहता हूँ। यहाँ सती शब्द सभी पतिव्रताओंका उपलक्षण है। और सभी पतिव्रताओंके साथ-साथ मदालसाका स्मरण करते हैं नाभाजी, जिन्होंने प्रत्येक पुत्रको ऐसा दिव्य ज्ञान दिया जिससे वह गर्भमें ही न आए। मदालसाका व्यक्तित्व बड़ा ही पावन व्यक्तित्व है। **मदालसा**का अर्थ ही होता है **मदः अलसः यया सा मदालसा** अर्थात् जिनके कारण मद नीरस हो जाता है वे हैं मदालसा। स्वयं विश्वावसु गन्धर्वकी पुत्री और ऋतध्वज कुवलयाश्व महाराजकी धर्मपत्नी मदालसा अपने तीन-तीन पुत्रोंको – विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दनको – बाल्यावस्थामें लोरी सुनाती हुईं कितना दिव्य उपदेश देती हैं –

**शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव।**
**पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥**

(मा.पु. २५.११)

अर्थात् हे बालक। तुम शुद्ध हो। विशुद्ध जीवात्मा हो। तुम्हारा कोई नाम नहीं है। यह तो कल्पनासे अभी-अभी तुम्हारे हम भौतिक माता-पिताने यह नाम **विक्रान्त** रख दिया है। वास्तवमें तुम विक्रान्त नहीं हो। यह पञ्चात्मक शरीर भी तुम्हारा नहीं है, और तुम इसके नहीं हो। फिर किस कारणसे रो रहे हो?

**शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसारमायापरिवर्जितोऽसि।**
**संसारनिद्रां त्यज स्वप्नरूपां मदालसा पुत्रमुवाच वाक्यम्॥**

तुम शुद्ध जीवात्मा हो, तुम बुद्ध अर्थात् सब कुछ जान गए हो, तुम निरञ्जन हो, और तुम संसारकी मायासे वर्जित अर्थात् अत्यन्त दूर हो। अतः बेटे! स्वप्नरूप संसारकी निद्राको छोड़ दो। इस प्रकार मदालसाने अपने पुत्रको संबोधित करके यह वाक्य कहा। विक्रान्त भगवत्परायण हो गए। यही परिस्थिति सुबाहुके साथ भी संपन्न हुई। यही घटना घटी। सुबाहुको भी मदालसाने यही लोरी सुनाई, सुबाहु भी भगवत्परायण हो गए। पुनः यही परिस्थिति शत्रुमर्दन नामक बालकके साथ भी आई। वहाँ भी मदालसाने यही लोरी सुनाई। शत्रुमर्दन भी भगवत्परायण विरक्त परिव्राजक बन गए। चतुर्थ बालक अलर्कने जब जन्म लिया उस समय महाराजने मदालसासे विनती की कि मेरा वंश चलानेके लिये तो एक बालक चाहिये, इसको विरक्त मत बनाइये। मदालसाने महाराजकी बात मान ली। उनको प्रवृत्तिमार्गका उपदेश दिया। अन्ततोगत्वा एक पत्र लिखकर महाराज अलर्कके हाथमें विराजमान मुद्रिकाके भीतर छिपाकर रख दिया, और कहा – जब संकट पड़े तब तुम यह पत्र पढ़ लेना। वही हुआ। उस पत्रको पढ़कर अलर्क प्रवृत्तिको छोड़कर निवृत्तिके मार्गमें आ गए और धन्य-धन्य हो गए। धन्य हैं ये मदालसा, जिन्होंने अपने बेटोंको भगवत्परायण बना दिया।

**यज्ञपत्नियाँ** – भगवान् श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंको जब भूख लगी तब यज्ञपत्नियोंसे भगवान्ने भोजनकी याचना कराई, और वे तुरन्त विविध प्रकारके व्यञ्जन बनाकर प्रभुके पास लेकर दौड़ पड़ीं। वहाँ भगवान्को निहारकर वे धन्य हो गईं। क्या ही सुन्दर दिव्य झाँकी दिखी –

**श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे।**
**विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्॥**

(भा.पु. १०.२३.२२)

क्या ही सुन्दर! कोटि-कोटि बालदिवाकरोंको भी विनिन्दित करने वाले, दिव्य पीताम्बरको धारण किए हुए, वनमाला, मयूर-मुकुट, धातु, प्रवाल आदि अलंकारोंसे युक्त, अनुव्रतायाः अंसः अनुव्रतांसः तस्मिन् अनुव्रतांसे अर्थात् अनुकूल व्रतका आचरण करनेवाली राधाजीके स्कन्धपर अपना वाम करकमल धारण किए हुए, और दक्षिण करकमलसे स्वयं एक कमलपुष्पको हिलाते हुए, और **कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्** अर्थात् प्रभुके दिव्य कानोंमें उत्पल, उनका वह दिव्य अलक, मुखकमलपर मन्दहास – यह देखकर यज्ञपत्नियाँ धन्य हो गईं। प्रभुको प्रेमसे प्रसाद पवाया। प्रार्थना की – प्रभु! मुझे स्वीकार लीजिये। प्रभुने कहा – आप ब्राह्मण-पत्नियाँ हैं। आप यज्ञमें पधारें। कोई भी कुछ भी नहीं बोलेगा। आपके पति भी आपको स्वीकारेंगे।

**ब्रजनारी** अर्थात् वे धन्य व्रजबालाएँ जिनके लिये नाभाजीने कहा – **किये केसव अपने बस** – **कं ब्रह्माणमीशं शिवं च वशयति इति केशवः** अर्थात् जिन्होंने ब्रह्मा और शिवको भी वशमें कर लिया है ऐसे जगन्नियन्ता केशवको ही व्रजनारियोंने वशमें कर लिया। इसीलिये तो रसखानने कहा –

**शेष महेश गणेश दिनेश सुरेशहु जाहि निरन्तर गावैं।**
**जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सुबेद बतावैं**
**नारद से सुक ब्यास रटैं पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।**
**ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरी छाछ पै नाच नचावैं॥**

इस प्रकारके जितने भी नर-नारी हैं, मैं उनके यशको सतत गाना चाहता हूँ। जिनके हृदयमें श्रीहरि निरन्तर बसते हैं, मैं सेवा करनेके लिये उन्हीं परमभागवतोंके चरणकमलोंको प्राप्त करनेकी सतत इच्छा करता हूँ। नाभाजी आगे कहते हैं –

॥ ११ ॥

**अंघ्री अम्बुज पांसुको जन्म जन्म हौं जाचिहौं॥**
**प्राचीनबर्ही सत्यब्रत रहूगन सगर भगीरथ।**
**बाल्मीकि मिथिलेस गए जे जे गोविन्द पथ॥**

**रुक्मांगद हरिचंद भरत दधीचि उदारा।**
**सुरथ सुधन्वा सिबिर सुमति अति बलिकी दारा।।**
**नील मोरध्वज ताम्रध्वज अलरक की कीरति राचिहौं।**
**अंघ्री अम्बुज पांसुको जन्म जन्म हौं जाचिहौं।।**

**मूलार्थ** – **अंघ्री** अर्थात् चरण, **अम्बुज** अर्थात् कमल, **पांसु** अर्थात् धूलि। मैं **प्राचीनबर्हि**, महाराज **सत्यव्रत**, महाराज **रहूगण**, महाराज **सगर**, महाराज **भगीरथ**, महर्षि **वाल्मीकि**, मिथिलेश अर्थात् सीरध्वज महाराज **जनक** और **बहुलाश्व** – इस प्रकार जो-जो परम भागवत भगवान् गोविन्दके पथका अनुसरण किये हैं अर्थात् जो-जो भगवत्पथपर आरूढ़ हुए हैं, ऐसे महाराज **रुक्माङ्गद**, महाराज **हरिश्चन्द्र**, और भक्तशिरोमणि दशरथ-कैकेयीके संकल्पसे प्रकट हुए भैया **भरत**, उदार **दधीचि**, महाराज **सुरथ**, महाराज **सुधन्वा**, महाराज **शिबि** और अत्यन्त सुन्दर बुद्धिवालीमहाराज बलिकी पत्नी श्री**विन्ध्यावलीजी**, **नील**, **मोरध्वज**, **ताम्रध्वज**, और**अलर्क**की कीर्तिमें **राचिहौं** अर्थात् रंग जाऊँगा। और इन भागवतोंके चरणकमलकी धूलिको मैं **जन्म जन्म** अर्थात् अगणित जन्मोंतक याचनाका विषय बनाता रहूँगा, अर्थात् इनकी चरणधूलिको मैं माँगता रहूँगा। मुझे मिल जाए तो मैं धन्य हो जाऊँगा।

**प्राचीनबर्हि** जो महाराज ध्रुवके वंशमें जन्मे, उनके मनमें कर्मकाण्डके प्रति बहुत निष्ठा थी। उन्हें नारदजीने **पुरञ्जनोपाख्यान** सुनाकर कर्मकाण्डके अधिक प्रयोगसे हटाकर भगवत्प्रेमी बना दिया।

**सत्यव्रत** जो अभी इस मन्वन्तरके वैवस्वत मनु हैं तथा जिनके संकल्पसे भगवान्का मत्स्यावतार हुआ है।

**रहूगण** – यही सौवीराधिपति पालकीपर चढ़कर महर्षि कपिलसे विद्या प्राप्त करने जा रहे थे, जब एक पालकी-चालककी उच्छृङ्खलतासे वे क्षुब्ध हुए, तब पालकी चलानेवाले जडभरतने स्पष्ट कहा – तुम मूर्ख होकर भी पण्डितों जैसी बात बोलते हो। विद्वान् लोग कभी भी इस व्यवहारको तत्त्वावबोधके साथ नहीं जोड़ते। और उन्हीं रहूगणको जडभरतने यह समझाया कि रहूगण! यह अध्यात्म-विद्या तपस्यासे नहीं प्राप्त हो सकती। यज्ञ या मुण्डन अथवा ग्रहोंसे नहीं प्राप्त होती, तथा सूर्य, अग्नि और जलस्नानसे नहीं प्राप्त होती। यह तो जब तक साधक महापुरुषोंके चरणकमलके रजोसुखका प्रयोग करके अपने मनको शुद्ध नहीं करता, तब तक प्राप्त नहीं हो सकती। संपूर्ण व्यवहारोंकी जड़ है आचार्यको संतोष।

महाराज **सगर** – ये अयोध्याके चक्रवर्ती महाराज थे। इन्होंने सौ अश्वमेघ यज्ञ किये। सौवें यज्ञमें इन्द्रने विघ्न डाला और सगरके घोड़ेको चुराकर कपिलके आश्रममें बंद कर दिया। सगरके साठ हजार पुत्र ढूँढते-ढूँढते वहाँ आए और उन्होंने कपिलको दुर्वाक्य कहे। कपिलदेवकी क्रोधाग्निसे उनका शरीर भस्म हो गया। साठ हजार युवक राजपुत्रोंकी भस्मराशि देखकर स्वयं अंशुमान् क्षुब्ध हुए और कपिलदेवकी आज्ञासे उन्होंने, उनके पुत्र दिलीपने, तथा उनके पौत्र भगीरथने गङ्गाजीको लानेका यत्न किया। इस प्रकार सगर जैसे महापुरुषने भगवत्प्राप्ति करके सागरकी परम्पराको अक्षुण्ण और प्रामाणिक बनाया। भगीरथ इन्हीं महाराज सगरके प्रपौत्र थे। जब अंशुमान्‌को कपिलदेवने आज्ञा दी कि किसी प्रकार गङ्गा ले आएँगे तभी सगर-पुत्रोंका उद्धार हो सकेगा, तब गङ्गाको लानेके लिये तपस्या करके अंशुमान्‌ने शरीर छोड़ा, महाराज दिलीपने शरीर छोड़ा, फिर भगीरथने तपस्या की। और भगीरथने यत्न करके गङ्गाजीको प्रसन्न कर लिया और शिवजीकी सहायतासे गङ्गाजीको भगीरथ धराधामपर ले आए, इसलिये उनका नाम **भागीरथी** पड़ गया। धन्य हो गया वह व्यक्तित्व जिसने वसुधामें सुधारसका संचरण किया।

महर्षि **वाल्मीकि** – ये यद्यपि भृगुवंशी ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए, जन्मना ये ब्राह्मण थे, परन्तु कुसंगतिके कारण किरातोंके संसर्गसे वे दूषितहो गए थे। उनका ब्रह्मत्व तिरोहित हो गया था। परमेश्वरकी कृपासे और सप्तर्षियोंके संकल्पसे वाल्मीकिके जीवनमें सुधार आया। इनका पूर्वका नाम **अग्निशर्मा** था। किसी-किसीके मतमें इनका नाम **रत्नाकर** भी बताया जाता है। सप्तर्षियोंने इन्हें **मरा मरा**का ही उपदेश दिया – **मरा मरा मरा चैव मरेति जप सर्वदा** (भ.पु.प्र.प.)। **मरा मरा** जपते-जपते इनके मुखसे **राम** निकल गया। रामनामका इतना जप किया कि इनके शरीरपर दीमककी माटी आ गई, जिसे संस्कृतमें **वल्मीक** कहते हैं। वल्मीकसे ढके होनेके कारण इनका नाम **वाल्मीकि** है। अनन्तर इन्होंने ही **वाल्मीकीय रामायण**का सृजन किया, जो विश्वका प्रथम काव्य और आदिकाव्य बना। इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लोकमङ्गल कथा कहकर महर्षि वाल्मीकिने राष्ट्रकी व्यथा ही हर ली। इतना ही नहीं, उन्होंने श्रीरामचरितका वर्णन करनेके लिये सौ करोड़ रामायणें लिखीं – **चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्** (रा.र.स्तो. १)।

**मिथिलेश** – सीरध्वज जनक। ये भी भगवान्‌के पथपर आरूढ़ हुए। इन्हें श्रीरामके प्रति गूढ़ प्रेम था –

**प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहु॥**
**जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥**

(मा. १.१७.१-२)

जनकजीका भगवान्‌के प्रति इतना अनन्य प्रेम कि प्रथम दर्शनमें ही उन्होंने विश्वामित्रसे कह दिया कि श्रीरामको देखनेमें मेरा मन इतना अनुरक्त हो रहा है कि वह ब्रह्मसुखको हठात् छोड़ता जा रहा है –

**इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा॥**

(मा. १.२१६.५)

ऐसे गोविन्दपथपर आरूढ़ भक्तके चरणकी धूलिकी याचना स्वाभाविक ही है।

**रुक्माङ्गद** – यह अयोध्याके महाराज थे। इनकी एकादशी व्रतपर बहुत निष्ठा थी, और कईं बार भगवान्‌ने परीक्षा ली फिर भी ये डिगे नहीं। भगवान्‌ने इनकी परीक्षा लेनेके लिये एक मायाकी नारी इनके समक्ष भेज दी। उसका नाम ही था **मोहिनी**। महाराज उससे आकृष्ट हुए, उससे विवाह भी किया। उसने जब यह कहा था कि आपको मेरी प्रत्येक बात माननी पड़ेगी, उस समय महाराजने हाँ कह दिया। परन्तु जब उस मोहिनीने कहा – आपको एकादशी व्रत छोड़ना होगा, तब रुक्माङ्गदने कहा – तुम जाओ चाहे रहो, मैं एकादशी नहीं छोड़ता। तब भगवान् ही प्रकट हो गए।

**हरिश्चन्द्र** – यह भी अयोध्याके महाराज थे। इनकी यशोगाथा सुनकर विश्वामित्रने इनकी परीक्षा लेनी चाही और संपूर्ण राज्य ले लिया, यहाँ तक कि काशीमें स्वयं पत्नीके सहित बिक गए और डोमकी सेवामें लगे। मृत्यु-कर लेनेका कार्य करने लगे। रोहिताश्वको विश्वामित्रने सर्प होकर डस लिया। उसे लेकर शैव्या, जो ब्राह्मण-दासी हो गईं थीं, श्मशानमें आईं। उनसे महाराजने कर माँगा। उनके पास कुछ नहीं था। जब अपनी साड़ी ही देने लगीं तब भगवान्‌ने हाथ पकड़ लिया।

चूँकि यह चर्चा और यह प्रसंग अयोध्याके राजाओंका है – रुक्माङ्गद अयोध्याके राजा, हरिश्चन्द्र अयोध्याके राजा, अतः उनके संसर्गसे **भरत** भी अयोध्याधिपतिके पुत्र ही यहाँ स्वीकार किये जाएँगे, न तो दुष्यन्त-शकुन्तला पुत्र भरत, और न ही ऋषभ-जयन्ती पुत्र भरत। भरत अर्थात् श्रीरामके छोटे भ्राता जो परम भागवत हैं। वास्तवमें यदि यहाँ **भरत** शब्दसे दशरथनन्दन भरतका ग्रहण नहीं किया जाएगा तब तो भक्तमाल अधूरा ही रह जाएगा, क्योंकि नाभाजी सभीभक्तोंकी चर्चा करके भी यदि भरतजीकी चर्चा नहीं करेंगे तो यह ग्रंथ अधूरा रहेगा। इसलिये भक्तमालके अध्येताओंसे मेरा विनम्र

निवेदन है कि यहाँ **भरत** शब्दसे उन्हें न तो ऋषभ-जयन्ती पुत्र भरतका ग्रहण करना चाहिये न ही दुष्यन्त-शकुन्तला पुत्रका भरत ग्रहण करना चाहिये। वस्तुतः यहाँ भरतशब्दसे दशरथनन्दन, श्रीरामके छोटे भाई, भावते भैया भरतका ही ग्रहण करना चाहिये। श्रीभरतकी भक्तिके संबन्धमें हमारी **भरत महिमा** पुस्तक और हमारे **प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही**, **सब बिधि भरत सराहन जोगू** आदि प्रबन्धग्रन्थ पढ़ने चाहिये।

इसी प्रकार उदार **दधीचि** जिन्होंने देवताओंके लिये अपना अस्थिदान कर दिया था।

**सुरथ** और **सुधन्वा**की कथा महाभारतके जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें उपलब्ध होती है। जब युधिष्ठिरजीका अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हुआ और उनके अश्वकी रक्षामें पृथानन्दन अर्जुन नियुक्त हुए, उस समय सुरथ और सुधन्वाके पिताने उन्हें युद्धमें भेजना चाहा। सुधन्वा एकनारिव्रत थे। अपनी माताके आदेशका पालन करते हुए वे पत्नीके द्वारा की जा रही आरती उतरवानेमें थोड़े-से विलम्बित हो गए। तब उन्हें शङ्ख और लिखित जैसे कुटिल मन्त्रियोंकी सम्मतिसे खौलते हुए कढ़ाहीमें महाराजने फिंकवा दिया। परंतु सुधन्वा यथावत् बचे रहे। उनको कोई हानि नहीं हुई। यह आश्चर्य देखकर शङ्ख और लिखित एक नारियल फेंककर उनकी परीक्षा लेने लगे। नारियल उन्हींके सिरपर जाकर टकरा गया। वही सुधन्वा, भगवान्‌के साथ उपस्थित हुए अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये आए। घोर युद्ध किया। अर्जुनके हाथों सुधन्वाने वीरगति प्राप्त की और अर्जुनको पकड़े-पकड़े भगवान्‌के चरणपर गिर पड़े। उनका सिर भगवान्‌ने फेंक दिया, जो शिवजीने मुण्डमालामें लगा लिया। इसी प्रकार सुरथने भी अर्जुनसे घोर युद्ध किया और भगवान्‌का नाम लेकर जब अर्जुनने सुरथपर बाण चलाया तो सुरथको यह अनुमान लगाते विलम्ब न लगा कि प्रभु ही मुझे लेनेके लिये आए हैं। तुरन्त सुरथने दौड़कर अर्जुनको पकड़ लिया और अर्जुन द्वारा मारे जानेपर सुरथका सिर नीचे गिरा भगवान्‌के चरणों में। भगवान्‌ने वह सिर गरुडके द्वारा प्रयाग भिजवाया। उसे भी शिवजीने अपनी मुण्डमालामें लगा लिया।

बलिकी पत्नी **विन्ध्यावली**, जिनको नाभाजीने **सुमति** कहा, सुन्दर बुद्धिवाली हैं। उनके पति अर्थात् बलिका भगवान्‌ने सब कुछ ले लिया, फिर भी उन्हें क्रोध नहीं आया। और उन्होंने प्रभुकी कृतज्ञताका बोध किया – धन्य हैं प्रभु, मेरे पतिके अहंकारको आपने समाप्त कर दिया। और मेरे पतिके सिरपर आपने चरण रख दिया, उन्हें अपना कृपा-भाजन बना लिया। और मैं भी एक वरदान आपसे माँगती हूँ कि आप पातालमें विराजें और प्रातःकाल मैं जिस द्वारपर निहारूँ उस द्वारपर आपके दर्शन हो जाएँ। धन्य हैं वे विन्ध्यावली।

**नीलध्वज**, **मोरध्वज**, **ताम्रध्वज** और **अलर्क**की कीर्तिमें मैं रच जाऊँ, उनकी कीर्तिमें मैं मग्न हो जाऊँ। **नीलध्वज** बड़े प्रतापी राजा थे। जब युधिष्ठिरका अश्वमेधीय अश्व महाराज नीलध्वजकी राजधानीमें आया तब अग्निदेवके कहनेपर नीलध्वजने अर्जुनसे युद्ध नहीं किया और उन्हींकी सहायतामें लग गए।

**मोरध्वज** अद्भुत प्रतापी राजा थे। उनकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान्‌ने स्वयं एक ब्राह्मणका रूप बनाया, अर्जुनको बालक बनाया, यमराजको सिंह बनाया, और मोरध्वजसे कहने लगे कि यदि तुम्हारा शरीर तुम्हारे बेटे द्वारा आरेसे चीरा जाए और वह प्रसन्नतासे यह विधि संपन्न करे और तुम्हारे भी मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि न हो तो उसी मांसको मेरा सिंह खाएगा, तब मैं बालकके साथ भोजन कर लूँगा। यह बात स्वीकार कर ली मोरध्वजने। उनके पुत्र **ताम्रध्वज**ने हँसते-हँसते आरा चलाना प्रारम्भ किया। मोरध्वज **जय गोविन्द श्रीगोविन्द हरिगोविन्द** जैसे दिव्य भगवन्नामोंका उच्चारण करते रहे। अन्ततोगत्वा वाम आँखमें थोड़ा-सा आँसू आ गया। तब भगवान्‌ने कहा – अब तो मेरा सिंह भोजन नहीं करेगा। तब मोरध्वजने टूटे स्वरमें कहा कि भगवन्! आप मेरे वाम अङ्गको नहीं स्वीकार रहे थे, इसकी निरर्थकतापर मेरे वाम नेत्रमें आँसू आ गए थे। भगवान् प्रसन्न हो गए, और मोरध्वजको जीवित कर दिया। किन्हीं-किन्हींके मतमें मोरध्वजने अपने पुत्र ताम्रध्वजके ही शरीरको अपने हाथसे आरेसे चीरा था और भगवान्‌ने ताम्रध्वजको जीवित कर दिया था। इस कथाका संदर्भ सत्यनारायण व्रतकथामें वेदव्यासने इस प्रकार दिया है –

**धार्मिकः सत्यसन्धश्च साधुर्मोरध्वजोऽभवत्।**
**देहार्धं क्रकचैश्छित्त्वा दत्त्वा मोक्षमवाप ह॥**

(स्क.पु.रे.ख.स.क. ५.२२)

**अलर्क** महाराज, जिनकी माताकी चर्चा पूर्व छप्पयमें आ गई है, मदालसाके चतुर्थ पुत्र हैं। ऋतध्वजकी प्रार्थनापर मदालसाने इन्हें प्रवृत्ति-मार्गमें लगा दिया था। स्वयं जब वन जाने लगीं तब उन्होंने दो श्लोक लिखकर इनकी कलाईमें बाँध दिया था। जाते-जाते मदालसा यह कह कर गईं थीं कि जब संकटमें पड़ना तब मेरे इन दोनों श्लोकोंको पढ़ लेना। इधर सुबाहु आदि राजकुमारोंने अलर्कपर आक्रमण करवा दिया और महाराज संकटमें पड़ गए। मदालसाकी बात स्मरणमें आई और उन्होंने अपने हाथमें बँधे हुए श्लोकोंको खोलकर पढ़ा। जिसमें दो अनुष्टुप् लिखे थे –

**सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।**
**स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥**

(मा.पु. ३७.२३)

अर्थात् कभी भी किसीसे आसक्ति अथवा लगाव नहीं रखना चाहिये। यदि वह न छूट सके तो वह लगाव संतोंके साथ करना चाहिये। संतोंका संग ही भवरोगका बहुत बड़ा भेषज है, दवा है, औषधि है। द्वितीय श्लोक –

**कामः सर्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यते न सः।**
**मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥**

(मा.पु. ३७.२४)

कभी भी मनमें किसी प्रकारकी कामना नहीं करनी चाहिये। यदि कामनाका त्याग न हो सके तो उसको मुमुक्षाके प्रति करना चाहिये अर्थात् मोक्षकी कामना करनी चाहिये, क्योंकि वही कामना संसारके रोगकी भेषज है।

इस प्रकार प्राचीनबर्हि, सत्यव्रत, रहूगण, सगर, भगीरथ, महर्षि वाल्मीकि, योगिराज सीरध्वज जनक, रुक्माङ्गद, हरिश्चन्द्र, दशरथनन्दन श्रीरामभक्त श्रीरामानुज भरत, उदार दधीचि, सुरथ, सुधन्वा, शिबि, अत्यन्त शुद्ध बुद्धिवाली बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, नील अर्थात् नीलध्वज, मोरध्वज, ताम्रध्वज और अलर्ककी कीर्तिमें सतत मग्न रहूँगा और इन्हींके चरण-कमलकी धूलिकी मैं जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त याचना करता रहूँगा।

**॥ १२ ॥**

**तिन चरन धूरी मो भूरि सिर जे जे हरिमाया तरे॥**
**रिभु इक्ष्वाकु रु ऐल गाधि रघु रै गै सुचि सतधन्वा।**
**अमूरति अरु रन्ति उतंक भूरि देवल वैवस्वतमन्वा॥**
**नहुष जजाति दिलीप पुरु जदु गुह मान्धाता।**
**पिप्पल निमि भरद्वाज दच्छ सरभंग सँघाता॥**
**संजय समीक उत्तानपाद जाग्यवल्क्य जस जग भरे।**
**तिन चरन धूरी मो भूरि सिर जे जे हरिमाया तरे॥**

**मूलार्थ** – जो-जो भगवान्‌की मायानदीको पार कर चुके हैं, उन परम भागवतोंके चरणकी अनन्त धूलि मेरे सिरपर सतत विराजमान रहे। जैसे ऋभु, इक्ष्वाकु, ऐल, श्रीगाधि, रघु, रय, गय, पवित्र शतधन्वा, अमूर्ति और रन्तिदेव, उत्तङ्क, भूरिश्रवा, देवल, वैवस्वत मनु, श्रीनहुष, ययाति, दिलीप, पुरु, यदु, गुह, राजर्षि मान्धाता, पिप्पलाद महर्षि, निमि, भरद्वाज, दक्ष, शरभङ्ग आदि भगवत्परायण मुनिगण, सञ्जय, महर्षि शमीक, उत्तानपाद, याज्ञवल्क्य – ऐसे राजर्षि महर्षियोंने अपने यशसे जगको भर दिया है। उन्हीं परमभागवतोंके चरणकी बहुत-सी धूलि मेरे सिरपर सदैव रहे। यहाँ नाभाजीने जिन-जिन भागवतोंके नाम गिनाए हैं ये प्रायशः श्रीमद्भागवतजीमें वर्णित हैं, कुछ रामायणमें और कुछ महाभारतमें। ये सब अपने भजनके प्रभावसे वैष्णवीमायानदीको पार कर चुके हैं। इनमें हैं – (१) **श्रीऋभु** (२) **इक्ष्वाकु** (३) **ऐल** अर्थात् सुद्युम्न (४) विश्वामित्रके पिता **गाधि** (५) **रघु**, जिनके नामसे यह रघुवंश प्रसिद्ध हुआ और इन्हीं रघुके पुत्र अज और इन्हीं अजके पुत्र दशरथ और उनके पुत्र भगवान् राम। इनके संबन्धमें भागवतकार कितना सुन्दर श्लोक कहते हैं –

**खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।**
**अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत्॥**
**तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः।**
**अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।**
**रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥**

(भा.पु. ९.१०.१-२)

इसी प्रकार (६) **रय** (७) राजर्षि **गय** (८) पवित्र **शतधन्वा** जिनका वर्णन श्रीभागवतके उत्तरार्धमें है, जो स्यमन्तक मणि अक्रूरजीके पास रखकर भाग रहे थे और मिथिलाके उपवनमें भगवान् श्रीकृष्णके चक्रसे उनका वध हुआ और उन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हो गई (९) **अमूर्ति** (१०) **रन्तिदेव** जिनकी कथा भागवतजीके नवम स्कन्धमें है – अयाचितवृत्तिका पालन करते हुए ४८ दिन तक जब उन्होंने कुछ नहीं लिया और ४९वें दिन कुछ मिला कभी ब्राह्मण, कभी चाण्डाल, कभी कुत्ता, और अन्ततोगत्वा एक भूखे पुल्कसको सब कुछ दे डाला तब भगवान् प्रकट हो गए। और भगवान्‌के यह कहनेपर कि वरदान माँगो, उन्होंने कह दिया कि मैं यही वरदान माँगता हूँ कि किसीको अब कष्ट न हो। ऐसे रन्तिदेव जिनके संबन्धमें गोस्वामीजीने कहा –

**रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥**

(मा. २.९५.४)

(११) **उत्तङ्क** (१२) **भूरिश्रवा** जो दुर्योधनके पितृव्य लगते थे – महाभारतके युद्धमें सात्यकिसे युद्ध करते समय अर्जुनने जिनकी भुजा काट दी थी और फिर पृथ्वीपर बैठकर सात्यकिसे वार्तालाप करते हुए उन्हींकी तलवारसे वह वीरगतिको प्राप्त हो गए (१३) महर्षि **देवल** (१४) **वैवस्वत मनु** जिनके संबन्धमें रघुवंश महाकाव्यके प्रथम सर्गके ११वें श्लोकमें कालिदास कहते हैं –

**वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।**
**आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव॥**

(र.वं. १.११)

अर्थात् राजाओंमें वैवस्वत मनु उसी प्रकार माननीय हुए जैसे वेदोंमें ॐकार माननीय है। हम सब जिस मन्वन्तरमें रह रहे हैं, उस मन्वन्तरके अधिपति यही वैवस्वत मनु हैं। इन्हें श्राद्धदेव भी कहते हैं। (१५) **नहुष** जो ब्राह्मणोंके शापसे गिरगिट बने और फिर भगवान् कृष्णका स्पर्श पाकर उनका उद्धार हो गया (१६) **ययाति** जो यदु और पुरुके पिता थे, वे भी दृढ़ वैराग्य प्राप्त करके परमगतिको प्राप्त हुए। (१७) **दिलीप** – एक तो भगीरथके पिता दिलीप और दूसरे रघुजीके पिता श्रीदिलीप जिन्होंने ९९ यज्ञ पूर्ण कर लिये थे और १००वें अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रने उनका घोड़ा पकड़ा था। और रघुसे तुमुल युद्ध होनेके पश्चात् अन्तमें जब इन्द्र रघुसे संतुष्ट हुए तब रघुने यही कहा – "आप घोड़ा ले जाएँ, पर १००वें अश्वमेध यज्ञका फल मेरे पिताजीको मिल जाना चाहिये।" और ऐसा ही हुआ, और वे परमपदको प्राप्त हुए। (१८) **पुरु** – इन्होंने ययातिको अपनी युवावस्था दी थी, और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके कारण ये भी भगवान्की मायाको पार गए, और उन्हें परम पदकी प्राप्ति हुई (१९) **यदु** – साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके वंशप्रवर्तक – इन्होंने धर्मकी सूक्ष्मताका विचार करके पिताके माँगनेपर भी उन्हें अपना यौवन नहीं दिया, क्योंकि उन्हें यह लगा कि इस यौवनसे पिता माताका उपभोग करेंगे और मुझपर मातृभोगनीयताका पाप लग जाएगा, इसीलिये तो इनके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रादुर्भाव हुआ (२०) **गुह** – इनकी कथा श्रीरामायणमें प्रसिद्ध है। ये भगवान्के अन्तरङ्ग सखा हैं। इनके लिये वाल्मीकि कहते हैं – **गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम्** (वा.रा. १.१.२९)। और इनके संबन्धमें संतोके मुखसे कथा सुनी जाती है कि भगवान् श्रीरामके वनवास चले जानेपर वे सतत रोते रहते थे। और उन्होंने इतना रोया कि इनके नेत्रसे पहले तो आँसू गिरे और फिर रक्त

गिरने लगा। धीरे-धीरे इनके नेत्रकी दृष्टि चली गई। और जब भगवान् श्रीराम वनवाससे प्रत्यावृत्त हुए अर्थात् लौटे तब सबने इन्हें समाचार दिया कि प्रभु श्रीराम आ गए हैं। तब – **सुनत गुहउ धायउ प्रेमाकुल** (मा. ७.१२१.१०) – ये सुनकरके दौड़े अर्थात् दिखता नहीं था इन्हें। परन्तु – **प्रभुहिं सहित बिलोकि बैदेही** (मा. ७.१२१.११) – जब भगवान् श्रीरामके पास ये पहुँचे तब इन्हें फिर दृष्टि मिल गई, और इन्होंने सीतारामजीके दर्शन किए। इन्हींके संबन्धमें भगवान् रामने उत्तरकाण्डमें यह कहा –

**तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥**

(मा. ७.२०.३)

और (२१) **मान्धाता** – ये तो चक्रवर्ती नरेन्द्र थे ही। कहा यह जाता है कि जहाँ तक सूर्यनारायणकी रश्मियाँ जाती हैं वहाँ तककी भूमि मान्धाताकी थी। इन्हीं मान्धातासे ५० कन्याएँ प्राप्त की थीं महर्षि सौभरिने। इन्हीं मान्धाताके पुत्र थे मुचुकुन्द। (२२) **पिप्पलाद** – ये उच्च कोटिके महर्षि थे (२३) **निमि** – जनकवंशके प्रवर्तक (२४) **भरद्वाज** – सप्तर्षियोंमें एक, ये महर्षि वाल्मीकिके शिष्य भी थे। इन्होंने ही याज्ञवल्क्यजीसे भगवान् श्रीरामके आध्यात्मिक पक्षकी चर्चा की, और इन्हींके प्रश्नके आधारपर याज्ञवल्क्यजीने कर्मघाटके आधारपर श्रीरामकथा इन्हें सुनाई। (२५) **दक्ष** – पुराणमें दक्ष दो हैं। प्रथम सतीजीके पिता दक्ष जिनका वध शिवजीने किया था। वे अभिप्रेत नहीं है। वे भगवान्‌की मायाको नहीं तरे। यहाँ द्वितीय दक्षकी चर्चा है। यही दक्ष फिर जाकर प्रचेताओंके यहाँ जन्म लेते हैं और इन्होंने भगवान्‌की तपस्या करके उनसे प्रजावृद्धिका वरदान पाया। इन्होंने दो बार दस-दस लाख पुत्रोंको जन्म दिया, जिन्हें नारदजीने परिव्राजक बनाया। फिर नारदजीको इन्होंने यह शाप दिया कि तुम २४ मिनटसे अधिक कहीं नहीं रह सकते। अनन्तर इन्होंने ६० कन्याओंको जन्म दिया, जिनसे संपूर्ण सृष्टि भरी-पूरी हो गई। इन्हीं दक्षकी यहाँ चर्चा की जा रही है। (२६) **सरभंग सँघाता** – शरभङ्ग रामायणके प्रसिद्ध ऋषि हैं। इन्होंने भगवान् रामसे कहा – "प्रभु! जब मैं ब्रह्मलोक जा रहा था, उसी समय मैंने वनमें आपके आनेकी बात सुनी। मैं ब्रह्माजीके सिंहासनसे कूद पड़ा और अपनी कुटियामें आ गया। तबसे आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज आपके दर्शनसे मेरा हृदय शीतल हो गया," यथा –

**जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ स्रवन बन ऐहैं रामा॥**
**चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥**

(मा. ३.८.२-३)

**सँघाता**का तात्पर्य यह है – फिर इनके संपर्कमें आनेवाले अनेक मुनिगण जो शरभङ्गके परलोक जाते समय श्रीरामजीके साक्षी बने, जिनके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा –

**ऋषि निकाय मुनि वर गति देखी। सुखी भए निज हृदय बिशेषी॥**
**अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनतहित करुना कंदा॥**
**पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवरबृंद बिपुल सँग लागे॥**

(मा. ३.९.३-५)

इन्हींमें सुतीक्ष्णजी आदि दण्डकवनके सभी ऋषिगण गणित हैं। (२७) **सञ्जय** जो व्यासजीकी कृपासे दिव्यदृष्टि पाकर गीताशास्त्रके श्रोता और द्रष्टा बने। गीतामें **सञ्जय उवाच** प्रसिद्ध ही है। सञ्जयका अन्तिम निर्णय बहुत ही रोचक और बहुत ही सिद्धान्त-संगत है –

**यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।**
**तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥**

(भ.गी. १८.७८)

(२८) **शमीक** – इनके गलेमें महाराज परीक्षित्ने मृत सर्प डाल दिया फिर भी इन्हें क्रोध नहीं आया। उलटे पुत्रके द्वारा परीक्षित्को शाप देनेकी बात सुनकर शमीक बहुत दुःखी हुए, और भगवान्से क्षमा माँगते हुए कहा – "मेरे पुत्रने जो अनुचित किया, प्रभु! आप क्षमा कर दें।" (२९) **उत्तानपाद** – परमभागवत ध्रुवके पिताश्री। पहले तो ध्रुवका इन्होंने अपमान किया परन्तु जब ध्रुव भगवान्से वरदान प्राप्त करके आए तो हृदयसे लगा लिया, और ध्रुवको राज्य सौंपकर वनको चले गए। (३०) **याज्ञवल्क्य** – इनकी भगवद्भक्तिकी कहाँ तक बात कही जाए? इन्होंने महर्षि भरद्वाजको श्रीराम-कथा सुनाई और यही जनकजीके पुरोहित बने। इन्होंने जनक-सुनयनाजीको संपूर्ण राम-कथा सुनाई थी। सुनयनाजीने इसका उद्धरण कौशल्याजीको दिया –

**राम जाइ बन करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहैं राजू॥**
**अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहैं अपने अपने थल॥**
**यह सब जाग्यबल्क्य कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाखा॥**

(मा. २.२८५.६-८)

इन सबके यशसे संसार भर गया है। ऐसे श्रीहरिमायाको तरने वाले महर्षियोंके लिये स्पष्ट कह दिया नाभाजीने कि मेरे सिरपर इनके चरणकी धूलिकी राशि सतत विराजमान रहे। अब नाभाजी

याज्ञवल्क्यजी, निमि और नौ योगेश्वरोंके चरणत्राण अर्थात् पादुकाकी शरणागति चाह रहे हैं। क्योंकि योगेश्वर ब्राह्मण हैं, वे पनही तो धारण कर नहीं सकते, वे तो पादुका ही धारण करेंगे। और निमि भी पादुका ही धारण करेंगे। इसलिये उचित है कि यहाँ **पादत्रान**का अर्थ पादुका ही किया जाए।

॥ १३ ॥

**निमि अरु नव जोगेस्वरा पादत्रानकी हौं सरन॥**
**कबि हरि करभाजन भक्तिरत्नाकर भारी।**
**अन्तरिच्छ अरु चमस अनन्यता पधति उधारी॥**
**प्रबुध प्रेमकी रासि भूरिदा आबिरहोता।**
**पिप्पल द्रुमिल प्रसिद्ध भवाब्धि पारके पोता॥**
**जयंतीनंदन जगत के त्रिबिध ताप आमयहरन।**
**निमि अरु नव जोगेस्वरा पादत्रानकी हौं सरन॥**

**मूलार्थ** – (१) **श्रीकवि** (२) **श्रीहरि** और (३) **श्रीकरभाजन** – ये भक्तिके विशाल महासागर हैं। (४) **श्रीअन्तरिक्ष** और (५) **श्रीचमस**ने अनन्यताकी पद्धतिका उद्धार किया है। (६) **प्रबुद्ध** प्रेमकी राशि हैं। (७) **आविर्होत्र** – **भूरिदा** अर्थात् दिव्य ज्ञान, भक्ति और विज्ञानके अनन्त दानी हैं। (८) **पिप्पलायन** और (९) **द्रुमिल** – ये भवसागरके पारके लिये प्रसिद्ध जहाज हैं। भगवान् ऋषभदेव और जयन्तीजीके ये नवों पुत्र संसारके तीनों तापों और रोगोंको हरने वाले हैं। निमि और उन्हें भागवत धर्मका उपदेश करने वाले इन नौ योगेश्वरोंकी चरणपादुकाकी मैं शरण चाहता हूँ, और मैं उनकी शरणमें हूँ। इन नवयोगश्वरोंकी चर्चा श्रीमद्भागवतजीके एकादश स्कन्धके द्वितीय अध्यायसे पञ्चम अध्याय तक वर्णित है।

॥ १४ ॥

**पदपराग करुना करो जे नेता नवधा भक्ति के॥**
**श्रवन परीच्छित सुमति व्यास सावक कीरंतन।**
**सुठि सुमिरन प्रहलाद पृथु पूजा कमला चरननि मन॥**

**बंदन सुफलक सुबन दास दीपत्ति कपीश्वर।**
**सख्यत्वे पारथ समर्पन आत्म बलीधर॥**
**उपजीवी इन नाम के एते त्राता अगतिके।**
**पदपराग करुना करो जे नेता नवधा भक्ति के॥**

**मूलार्थ** – अब नाभाजी नवधा भक्तिके नव आदर्शोंकी चर्चा करते हैं। प्रह्लादजीने हिरण्यकशिपुके समक्ष नवधा भक्तिकी इस प्रकार चर्चा की है –

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥**
**इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।**
**क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥**

(भा.पु. ७.५.२३-२४)

भगवान्‌की कथाका श्रवण, भगवन्नामका संकीर्तन, भगवान्‌का स्मरण, भगवान्‌के श्रीचरण-कमलका सेवन, भगवान्‌का पूजन, भगवान्‌का वन्दन, भगवान्‌के प्रति दास्य भाव, भगवान्‌के प्रति सख्य अर्थात् विश्वास और मित्रता, और भगवान्‌के प्रति आत्मनिवेदन अर्थात् सर्वसमर्पण – यही नवधा भक्ति है। नाभाजी कहते हैं कि इस नवधाभक्तिके जो नेता रहे हैं, आदर्श रहे हैं, वे नवों महाभागवत अपने चरणकमलके परागके द्वारा मुझपर करुणा करें। ये हैं – (१) श्रवणमें महाराज **परीक्षित्** (२) भगवान्‌के सुन्दर कीर्तनमें **वैयासकि** अर्थात् व्यासशावक व्यासतनु शुकाचार्यजी महाराज (३) भगवान्‌के सुन्दर स्मरणमें **प्रह्लाद** (४) भगवान्‌के श्रीचरणकमलके सेवनमें **कमला** अर्थात् लक्ष्मीजी (५) भगवान्‌के पूजनमें **श्रीपृथुजी** (६) भगवान्‌के वन्दनमें श्वफल्कके पुत्र **श्रीअक्रूरजी** (७) भगवान्‌के दास्यभावकी दीप्तिमें अर्थात् प्रकाशमें **श्रीहनुमान्‌जी** महाराज (८) भगवान्‌के सख्यत्व अर्थात् सख्यभक्तिमें पृथापुत्र **अर्जुन** (और उनके चारों भ्राता युधिष्ठिरजी, भीमजी, नकुलजी, सहदेवजी भी) और (९) भगवान्‌के आत्मनिवेदनमें दैत्यराज **बलि** – इन नामोंके **उपजीवी** अर्थात् श्रीपरीक्षित्, श्रीशुकाचार्य, श्रीप्रह्लाद, भगवती लक्ष्मी, श्रीपृथु, श्रीअक्रूर, श्रीहनुमान्‌जी, श्रीअर्जुन और श्रीबलि – ये उनके रक्षक हैं जिनकी कोई गति नहीं है अथवा **अ**कार अर्थात् भगवान् वासुदेव ही जिनकी गति हैं – उनकी भी ये रक्षा करते रहते हैं। अथवा मैं नाभा इन नवों महाभक्तोंके नामोंका उपजीवी हूँ, अर्थात् इन्हींसे मेरी जीविका चल रही है, और ये मुझ गतिहीनके रक्षक हैं। इनके लिये

**लघुभागवतामृत**में एक श्लोक है –

**श्रीकृष्णश्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने**
**प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।**
**अक्रूरस्त्वथ वन्दने च हनुमान्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः**
**सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषां फलम्॥**

अब नाभाजी उन महाभागवतोंकी चर्चा कर रहे हैं जो भगवान्‌की प्रसन्नताका आनन्द जानते हैं, और जो भगवान्‌के प्रसाद अर्थात् उपभुक्त प्रसादके स्वादका आनन्द भी जानते हैं। यहाँ **प्रसाद** शब्द प्रसन्नता और नैवेद्यग्रहण – इन दोनों अर्थोंमें प्रसिद्ध है।

**॥ १५ ॥**

**हरिप्रसाद रसस्वादके भक्त इते परवान॥**
**संकर सुक सनकादि कपिल नारद हनुमाना।**
**विष्वक्सेन प्रह्लाद बलि रु भीष्म जग जाना॥**
**अर्जुन ध्रुव अम्बरीष विभीषन महिमा भारी।**
**अनुरागी अक्रूर सदा उद्धव अधिकारी॥**
**भगवंत भुक्त उच्छिष्टकी कीरति कहत सुजान।**
**हरिप्रसाद रसस्वादके भक्त इते परवान॥**

**मूलार्थ** – (१) **श्रीशङ्करजी** (२) **श्रीशुकाचार्य** (३) **श्रीसनकादि** (४) **श्रीकपिल** (५) **श्रीनारद** (६) **श्रीहनुमान्‌जी** महाराज (७) **श्रीविष्वक्सेन** (८) **श्रीप्रह्लाद** (९) **श्रीबलि** और (१०) **श्रीभीष्म** – इनको सारा संसार जानता है। ये भगवान्‌की प्रसन्नताका स्वाद जानते हैं। इसी प्रकार (११) **श्रीअर्जुन** (१२) **श्रीध्रुव** (१३) **श्रीअम्बरीष** और (१४) **श्रीविभीषण**की बहुत बड़ी महिमा है। भगवान्‌के भुक्त प्रसादके (१५) **अक्रूर** अत्यन्त अनुरागी हैं और (१६) **उद्धव** इसके अधिकारी भी हैं। ये सभी भागवत भगवान्‌के उच्छिष्टकी कीर्ति सदैव कहते रहते हैं। अर्थात् इन्हें भगवान्‌के भुक्तके जूठनका भी अनुभव है और भगवान्‌की प्रसन्नताका भी अनुभव है। विभीषणजी स्वयं गीतावलीजीमें कहते हैं – **तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं उबरी जूठनि खाउँगो** (गी. ५.३०.४) और ध्रुव कहते हैं – **उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि** (भा.पु. ११.६.४६)।

अब नाभाजी बहुत–से राजर्षि–महर्षियोंकी चर्चा करते हैं।

॥ १६ ॥

**ध्यान चतुर्भुज चित धर्यो तिन्हें सरन हौं अनुसरौं॥**
**अगस्त्य पुलस्त्य पुलह च्यबन बसिष्ठ सौभरि ऋषि।**
**कर्दम अत्रि ऋचीक गर्ग गौतम ब्यासससिषि॥**
**लोमस भृगु दालभ्य अंगिरा शृंगि प्रकासी।**
**मांडव्य बिश्वामित्र दुर्बासा सहस अठासी॥**
**जाबालि जामदग्नि मायादर्श कश्यप परबत पारासर पदरज धरौं।**
**ध्यान चतुर्भुज चित धर्यो तिन्हें सरन हौं अनुसरौं॥**

**मूलार्थ** – जिन राजर्षि–महर्षियोंने **चतुर्भुज** – चार भुजाओंवाले भगवान् विष्णु, अथवा **चतुर्भुज** – भक्तोंके पत्र–पुष्प–फल–जल रूप नैवेद्यको ग्रहण करनेवाले चारों वस्तुओंके भोक्ता भगवान् श्रीरामकृष्णान्यतरके ध्यानको चित्तमें धारण कर लिया है, उनकी शरणका मैं अनुसरण करता हूँ। जैसे (१) महर्षि **अगस्त्य** (२) महर्षि **पुलस्ति** और (३) महर्षि **पुलह** (४) महर्षि **च्यवन** (५) महर्षि **वसिष्ठ** जो श्रीरामजीके गुरुदेव हैं (६) महर्षि **सौभरि** जिनको अन्तमें वैराग्य हुआ (७) महर्षि **कर्दम** जो कपिलदेवके पिताश्री हैं (८) महर्षि **अत्रि** जो सप्तर्षियोंमें एक हैं, और ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंमें द्वितीय हैं। इन्होंने ही श्रीचित्रकूटमें भगवान् श्रीसीता–राम–लक्ष्मणका स्वागत किया और **नमामि भक्तवत्सलम्** (मा. ३.४.१–१२) जैसे स्तोत्रका गायन किया (९) महर्षि **ऋचीक** जो जमदग्निजीके पिता हैं, जिनके चरुके प्रसादसे जमदग्नि और विश्वामित्र दोनोंकी उत्पत्ति हुई (१०) महर्षि **गर्ग** – इन्होंने ही भगवान् कृष्णका नामकरण किया। इनके संदर्भमें भागवतके दसवें स्कन्धके आठवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें कहा गया –

**गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।**
**व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः॥**

(भा.पु. १०.८.१)

(११) महर्षि **गौतम** – अहल्याजीके पति। इन्होंने ही तो अहल्याको पाषाण बननेका शाप दिया। इनके संबन्धमें रामचरितमानसमें कहा गया –

**गौतम नारी स्राप बस उपल देह धरि धीर।**
**चरन कमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥**

(मा. १.२१०)

इसी प्रकार (१२) वेदव्यासजीके अनेक शिष्य (१३) महर्षि **लोमश** जो काकभुशुण्डिजीको पहले तो शाप देते हैं फिर उनके गुरु बनकर उन्हें धन्य कर देते हैं (१४) महर्षि **भृगु** (१५) महर्षि **दाल्भ्य** (१६) श्री**अङ्गिरा** (१७) परम प्रकाशवान् **शृङ्गी** ऋष्यशृङ्ग – इन्हींके द्वारा किये गए पुत्रेष्टियज्ञसे भगवान् श्रीरामजीका आविर्भाव हुआ। इसलिये इन्हें **प्रकासी** कहा गया – प्रकाशमान ऋष्यशृङ्ग (१८) महर्षि **माण्डव्य** इन्होंने ही तो धर्मराजको शाप देकर विदुर बना दिया (१९) महर्षि **विश्वामित्र** जो गायत्रीजीके द्रष्टा और भगवान् श्रीरामके गुरु रहे हैं, जिनकी कथा रामायणमें बहुत रोचकतासे प्रस्तुत की गई है –

**बिश्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी॥**

(मा. १.२०६.२)

(२०) महर्षि **दुर्वासा** जिनके क्रोधकी कथा रामायण, महाभारत और पुराणोंमें बहुशः प्रसिद्ध है (२१) अट्ठासी सहस्र ऋषि जो पुराणसत्रके श्रोता रहे हैं। इसी प्रकार (२२) महर्षि **जाबालि** जिनका वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरामजीसे बहुत कथन-उपकथन हुआ (२३) महर्षि **जमदग्नि** जो परशुरामजीके पिताश्री हैं और सम्प्रति सप्तर्षियोंमें द्वितीय महर्षि होकर पूजित हो रहे हैं (२४) **मायादर्श** अर्थात् मायाके दर्शन करने वाले महर्षि **मार्कण्डेय** (२५) **कश्यप** जो सूर्यनारायण और संपूर्ण देवताओंके पिता हैं, और यही आगे चलकर श्रीदशरथ बनते हैं (२६) परमऋषि **पर्वत** और (२७) महर्षि **पराशर** जो वेदव्यासजीके पिता और पराशरस्मृतिके रचयिता हैं – इनके चरणकमलकी धूलिको मैं अपने मस्तकपर धारण कर रहा हूँ।

## ॥ १७ ॥

**साधन साध्य सत्रह पुरान फलरूपी श्रीभागवत॥**
**ब्रह्म विष्नु शिव लिंग पद्म स्कंद विस्तारा।**
**बामन मीन बराह अग्नि कूरम ऊदारा॥**

**गरुड नारदी भविष्य ब्रह्मबैबर्त श्रबन सुचि।**
**मार्कंडेय ब्रह्माण्ड कथा नाना उपजे रुचि॥**
**परम धर्म श्रीमुखकथित चतुरश्लोकी निगम सत।**
**साधन साध्य सत्रह पुरान फलरूपी श्रीभागवत॥**

**मूलार्थ** – सत्रहों पुराण तो साधन-साध्य हैं परन्तु श्रीभागवत इनका फलरूप ही है। जैसे (१) **ब्रह्मपुराण** (२) **विष्णुपुराण** (३) **शिवपुराण** (४) **लिङ्गपुराण** (५) **पद्मपुराण** (६) विस्तृत **स्कन्दपुराण** (७) **वामनपुराण** (८) **मत्स्यपुराण** (९) **वराहपुराण** (१०) **अग्निपुराण** (११) परम उदार **कूर्मपुराण** (१२) **गरुडपुराण** (१३) **भविष्यपुराण** (१४) **नारदपुराण** (१५) श्रवण करनेमें पवित्र **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (१६) **मार्कण्डेयपुराण** और (१७) **ब्रह्माण्डपुराण** जिनकी नाना कथाओंमें रुचि उत्पन्न होती है – ये सत्रहों पुराण साधन-साध्य हैं। परन्तु **भागवतपुराण** इसलिये फलरूप है कि श्रीमुख द्वारा कथित इसमें परम धर्मका वर्णन है और श्रेष्ठ वेदके रूपमें यहाँ चतु:श्लोकी भागवत कही गई है। भागवतकी चतु:श्लोकी इस प्रकार है –

**अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।**
**पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥**
**ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।**
**तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥**
**यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।**
**प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥**
**एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।**
**अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥**

(भा.पु. २.९.३२-३५)

भगवान् कहते हैं कि सृष्टिके प्रारम्भमें भी और सृष्टिके पूर्व भी मैं ही था। ये जो कुछ सत्-असत् दिखाई पड़ रहा है, स्थूल-सूक्ष्म ये कुछ नहीं था। पश्चात् भी मैं ही रहूँगा। जो इस समय वर्तमान है वह भी मैं ही हूँ। परमात्माके दर्शनके अभावमें जो प्रतीत हो रही है, और परमात्माका साक्षात्कार हो जानेपर जो नहीं प्रतीत होती उसीको परमात्माकी माया कहते हैं। जैसे रात्रिमें जुगनूका प्रकाश प्रतीत होता है और दिनमें जुगनूका प्रकाश प्रतीत नहीं होता, जबकि वह रहता है; उसी प्रकार अज्ञानमें यह

माया प्रतीत होती है और ज्ञान होनेपर नहीं प्रतीत होती है। जिस प्रकार पाँचों महाभूत सभी पदार्थोंमें अंशतः रहते हैं, पूर्णतः नहीं रहते, उसी प्रकार मैं परमात्मा सबके हृदयमें अंशतः अर्थात् अन्तर्यामी रूपमें रहता हूँ, पूर्णतः कहीं नहीं रहता। तत्त्वजिज्ञासुके द्वारा यही जिज्ञास्य है, जानने योग्य है, कि जो अन्वय और व्यतिरेकके द्वारा सर्वत्र विराजमान है अर्थात् सृष्टिके रहनेपर भी जो रहेगा और न रहनेपर भी जो विद्यमान रहेगा वही तो परमात्मतत्त्व है।

॥ १८ ॥

**दस आठ स्मृति जिन उच्चरी तिन पद सरसिज भाल मो॥**
**मनुस्मृति आत्रेय वैष्णवी हारीत यामी।**
**जाग्यबल्क्य अंगिरा शनैश्चर सामर्तक नामी॥**
**कात्यायनि सांडिल्य गौतमी बासिष्ठी दाषी।**
**सुरगुरु सातातापि परासर क्रतु मुनि भाषी॥**
**आसा पास उदार धी परलोक लोक साधन सो।**
**दस आठ स्मृति जिन उच्चरी तिन पद सरसिज भाल मो॥**

**मूलार्थ** – अठारह स्मृतियोंका जिन आचार्योंने उच्चारण किया है ऐसे (१) **मनु** (२) **अत्रि** (३) **विष्णु** (४) **हारीत** (५) **यम** (६) **याज्ञवल्क्य** (७) **अङ्गिरा** (८) **शनैश्चर** (९) **सांवर्तक** (१०) **कात्यायन** (११) **शाण्डिल्य** (१२) **गौतम** (१३) **वसिष्ठ** (१४) **दक्ष** (१५) **बृहस्पति** (१६) **शातातप** (१७) **पराशर** और (१८) **क्रतु** – इन आचार्योंके चरण-कमल मेरे मस्तकपर सतत विराजमान रहें। यह स्मृतियाँ हैं – मनुस्मृति, अत्रिस्मृति, वैष्णवी स्मृति, हारीतकस्मृति, यमस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, अङ्गिरःस्मृति, शनैश्चरस्मृति, सांवर्तकस्मृति, कात्यायनस्मृति, शाण्डिल्यस्मृति, गौतमस्मृति, वसिष्ठस्मृति, दक्षस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, शातातपस्मृति, पराशरस्मृति, और क्रतुस्मृति। ये आचार्य ही हमारे जीवनकी आशा हैं, ये उदारबुद्धि वाले हैं, और ये परलोक और लोक दोनोंमें हमारे साधनस्वरूप हैं।

॥ १९ ॥

**पावैं भक्ति अनपायिनी जे रामसचिव सुमिरन करैं॥**
**धृष्टी बिजय जयंत नीतिपर सुचिर बिनीता।**
**राष्टरबर्धन निपुन सुराष्टर परम पुनीता॥**
**असोक सदा आनंद धर्मपालक तत्ववेत्ता।**
**मंत्रीवर्य सुमंत्र चतुर्जुग मंत्री जेता॥**
**अनायास रघुपति प्रसन्न भवसागर दुस्तर तरैं।**
**पावैं भक्ति अनपायिनी जे रामसचिव सुमिरन करैं॥**

**मूलार्थ** – श्रीरामजीके आठों मन्त्रियोंका जो स्मरण करते हैं, वे अनपायिनी भक्ति पा जाएँगे, उनपर अनायास ही भगवान् श्रीराम सदैव प्रसन्न रहेंगे, और वे दुस्तर भवसागरको पार कर लेंगे। वे हैं – (१) **धृष्टि** (२) **विजय** और (३) **जयन्त** जो नीतिपरायण, पवित्र और अत्यन्त विनम्र हैं (४) **राष्ट्रवर्धन** जो अत्यन्त निपुण हैं (५) **सुराष्ट्र** जो अत्यन्त पवित्र हैं (६) **अशोक** जो सदा आनन्दमें रहते हैं (७) **धर्मपाल** जो तत्त्ववेत्ता हैं और (८) **सुमन्त्र** – चारों युगोंमें जितने मन्त्री हैं सबसे श्रेष्ठ सुमन्त्र मन्त्री हैं।

॥ २० ॥

**सुभ दृष्टि वृष्टि मोपर करौ जे सहचर रघुवीर के॥**
**दिनकरसुत हरिराज बालिबछ केसरि औरस।**
**दधिमुख द्विबिद मयंद रीछपति समको पौरस॥**
**उल्का सुभट सुषेन दरीमुख कुमुद नील नल।**
**सरभर गवय गवाच्छ पनस गँधमादन अतिबल॥**
**पद्म अठारह यूथपति रामकाज भट भीरके।**
**सुभ दृष्टि वृष्टि मोपर करौ जे सहचर रघुवीर के॥**

**मूलार्थ** – अठारह पद्म यूथोंके अधिपति प्रभु श्रीरामके नित्य सहचर हैं एवं युद्धके अवसरपर भगवान् श्रीरामका काज करनेवाले हैं, अर्थात् ये यूथपति युद्धके अवसरपर भगवान् श्रीरामके राक्षसवध रूप कार्यमें नित्य सहायक हैं। ऐसे सीतापति श्रीराघवकी संहार-लीलाके नित्य परिकर भट मुझपर शुभ दृष्टिकी वृष्टि करते रहें, अर्थात् मुझे अपनी कल्याणमयी चितवनसे निहारकर मुझ अकिञ्चनमें श्रीराम-प्रेमको भरते रहें। इनमें प्रमुख हैं – (१) सूर्यपुत्र वानरोंके राजा **सुग्रीव** (२) वालिपुत्र युवराज **अङ्गद** (३) केसरीजीके औरसपुत्र अञ्जनानन्दवर्धन **श्रीहनुमान्‌जी** महाराज (४) **दधिमुख** (५) **द्विविद** (६) **मयन्द** (७) जिनके समान और किसीका पौरुष नहीं है अर्थात् अतुल बलशाली ऋक्षराज **जाम्बवान्** (८) **उल्का सुभट** अर्थात् अन्धकारके समय दीपक जलाकर सेवाकरनेवाले उल्का सुभट नामक विशेष यूथपति (९) **सुषेण** (१०) **दरीमुख** (११) **कुमुद** (१२) **नील** (१३) **नल** (१४) **शरभ** (१५) **गवय** (१६) **गवाक्ष** (१७) **पनस** और (१८) अत्यन्त बलशाली **गन्धमादन**। इस प्रकार अठारह पद्म यूथ वानरोंके पूर्व-वर्णित अठारह यूथपति अर्थात् सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, दधिमुख, द्विविद, मयन्द, जाम्बवान्, उल्का सुभट, सुषेण, दरीमुख, कुमुद, नील, नल, शरभ, गवय, गवाक्ष, पनस और गन्धमादन जो युद्धके समय श्रीराम-कार्यके संपादनमें परमवीरता करते हैं वे मुझपर कल्याणमयी दृष्टिका वर्षण करते रहें। इसी आशयको रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें शुकने भी रावणसे स्पष्ट किया है –

**अस मैं सुना श्रवन दशकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥**

(मा. ५.५५.३)

## ॥ २१ ॥

**ब्रज बड़े गोप पर्जन्य के सुत नीके नव नंद॥**
**धरानंद ध्रुवनंद तृतीय उपनंद सुनागर।**
**चतुर्थ तहाँ अभिनंद नंद सुखसिंधु उजागर॥**
**सुठि सुनंद पसुपाल निर्मल निश्चय अभिनंदन।**
**कर्मा धर्मानंद अनुज बल्लभ जगबंदन॥**
**आसपास वा बगर के जहँ बिहरत पसुप स्वछंद।**
**ब्रज बड़े गोप पर्जन्य के सुत नीके नव नंद॥**

**मूलार्थ** – व्रजमें श्रेष्ठ गोप व्रजेन्द्र पर्जन्यके **नवनन्द** नामक पुत्र बड़े प्यारे हैं। इनमेंसे (१) **ध्रुवनन्द** (२) **धरानन्द** (३) अत्यन्त चतुर **उपनन्द** (४) **अभिनन्द** (५) **नन्द** जो सुखके सागर हैं और उजागर भी हैं (६) **सुनन्द** जो अत्यन्त पवित्र हैं और जो पशुओंका पालन करते हैं, जिनका निश्चय और अभिनन्दन अत्यन्त निर्मल है (७) **कर्मानन्द** (८) **धर्मानन्द** और (९) जगत्के वन्दनीय सबसे छोटे भाई **वल्लभ**। ये सब गोप व्रजके आस-पास रहते हैं जहाँ स्वच्छन्द रूपसे गोप विचरण करते रहते हैं। व्रजमें बड़े गोप पर्जन्यजीके नौ पुत्र बहुत प्रसिद्ध हैं।

॥ २२ ॥

**बाल वृद्ध नर नारि गोप हौं अर्थी उन पाद रज॥**
**नन्दगोप उपनंद ध्रुव धरानंद महरि जसोदा।**
**कीरतिदा वृषभानु कुँवरी सहचरि मन मोदा॥**
**मधु मंगल सुबल सुबाहु भोज अर्जुन श्रीदामा।**
**मंडली ग्वाल अनेक स्याम संगी बहु नामा॥**
**घोष निवासिनिकी कृपा सुर नर बाँछित आदि अज।**
**बाल वृद्ध नर नारि गोप हौं अर्थी उन पाद रज॥**

**मूलार्थ** – नाभाजी कहते हैं कि गोपोंमें श्रेष्ठ **श्रीनन्दराज**, **श्रीउपनन्द**, **श्रीध्रुवनन्द**, **श्रीधरानन्द**, और नन्दगोपकी पटरानी महरि **यशोदा** माता, और **कीरतिदा वृषभानु कुँवरी सहचरि मन मोदा** अर्थात् श्रीराधाजीकी माँ कीर्तिदा **कलावतीजी**, राधाजीके पिता **श्रीवृषभानुजी**, स्वयं **श्रीराधाजी**, राधाजीकी मनमें प्रसन्न रहने वाली **आठ सखियाँ**, **मधुमङ्गल**, **सुबल**, **सुबाहु**, **भोज**, **अर्जुन**, **श्रीदामा** – इस प्रकार भगवान् कृष्णके साथ रहनेवाले अनेक नामवाले अनेक ग्वालोंके मण्डल – ऐसे जिन घोषनिवासियोंकी कृपाको देवता, मनुष्य और किंबहुना **अज** अर्थात् ब्रह्माजी भी चाहते रहते हैं उन्हीं बाल-वृद्ध नर-नारियोंके चरण-कमलका मैं अभ्यर्थी रहूँ।

नाभाजीने इस छन्दमें **वृषभानु कुँवरी सहचरि** कहा है। राधाजीकी मुख्य आठ सखियाँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ ध्यान रखना चाहिये कि जैसे भगवती सीताजीकी आठ सखियाँ प्रसिद्ध हैं – (१) चारुशीला (२) लक्ष्मणा (३) हेमा (४) क्षेमा (५) वरारोहा (६) पद्मगन्धा (७) सुलोचना और (८) सुभगा, उसी प्रकार राधाजीकी भी आठ सखियाँ प्रसिद्ध हैं – (१) ललिता (२) विशाखा (३) चित्रा

(४) इन्दुलेखा (५) चम्पकलता (६) रङ्गदेवी (७) सुदेवी और (८) तुङ्गविद्या। इन्हीं आठ सखियोंके आलोकमें राधाजीकी लीलाएँ चलती रहती हैं और इनमें ही भगवान्‌की लीलाके दर्शनसे मनमें आनन्द रहता है।

॥ २३ ॥

**ब्रजराज सुबन संग सदन वन अनुग सदा तत्पर रहैं॥**
**रक्तक पत्रक और पत्र सबही मन भावे।**
**मधुकंठी मधुवर्त रसाल विसाल सुहावे॥**
**प्रेमकंद मकरंद सदा आनंद चंद्रहासा।**
**पयद बकुल रसदान सारदा बुद्धिप्रकासा॥**
**सेवासमय विचारिकै चारु चतुर चित की लहैं।**
**ब्रजराज सुबन संग सदन वन अनुग सदा तत्पर रहैं॥**

**मूलार्थ** – व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके मन और भवनमें साथ रहने वाले १६ ऐसे सेवक हैं जो देखनेमें सुन्दर, सेवामें चतुर और चित्तकी आकांक्षाओंको भी स्वीकार कर लेते हैं। वे सदैव भगवान्‌की सेवामें तत्पर रहते हैं। वे हैं – (१) **रक्तक** (२) **पत्रक** तथा (३) **पत्री** – ये सबको भाते रहते हैं। इसी प्रकार (४) **मधुकण्ठ** (५) **मधुवर्त** (६) **रसाल** तथा (७) **विशाल** – ये सेवक बहुत सुन्दर लगते हैं। (८) **प्रेमकन्द** (९) **मकरन्द** (१०) **सदानन्द** (११) **चन्द्रहास** (१२) **पयद** (१३) **बकुल** (१४) **रसदानी** (१५) **शारदाप्रकाश** एवं (१६) **बुद्धिप्रकाश** – ये सभी परिकर भगवान् श्रीकृष्णके मन और भवनमें साथ रहते हुए, प्रभुका अनुगमन करते हुए, सेवामें सदैव तत्पर रहते हैं। और सेवाके समयका विचार करके सबके सम्बलकी रक्षा करते हुए, चतुराईपूर्वक भगवान्‌की रुचिको समझकर सेवा करते रहते हैं।

॥ २४ ॥

**सप्त द्वीप में दास जे ते मेरे सिरताज॥**
**जम्बू और पलच्छ सालमलि बहुत राजऋषि।**
**कुस पबित्र पुनि क्रौंच कौन महिमा जाने लिखि॥**

**साक बिपुल बिस्तार प्रसिद्ध नामी अति पुहकर।**
**पर्बत लोकालोक ओक टापू कंचनधर॥**
**हरिभृत्य बसत जे जे जहाँ तिनसों नित प्रति काज।**
**सप्त द्वीप में दास जे ते मेरे सिरताज॥**

**मूलार्थ** – सप्तद्वीपमें जितने वैष्णव भक्त हैं वे मेरे सिरके आभूषण हैं। जैसे (१) **जम्बूद्वीप** (२) **प्लक्षद्वीप** और (३) **शाल्मलिद्वीप**में बहुत-से राजर्षि हैं। इसी प्रकार पवित्र (४) **कुशद्वीप** और (५) **क्रौञ्चद्वीप**में भी इतने बड़े राजर्षि हैं कि जिनकी महिमाको लिखकर कौन जान सकता है, अथवा जिनकी महिमाके लेशको भी कौन जान सकता है? विपुल विस्तारवाले (६) **शाकद्वीप** और प्रसिद्ध नामवाले (७) **पुष्करद्वीप**में भी अनेक भगवद्भक्त हैं। लोकालोक पर्वत जो टापू अर्थात् द्वीपका स्थान है और जो कञ्चन अर्थात् स्वर्णका घर है, वहाँ भी बहुत-से भगवद्भक्त विराजते हैं। भगवान्‌के जो-जो भक्त जहाँ-जहाँ बसते हैं, उनसे नित्य प्रति मेरा कोई-न-कोई प्रयोजन रहता है। अतः सप्तद्वीपके जो भक्त हैं, वे सब-के-सब मेरे सिरके ताज अर्थात् सिरके मुकुटमणि हैं। इनकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता।

॥ २५ ॥

**मध्यदीप नवखंड में भक्त जिते मम भूप॥**
**इलाबर्त आधीस संकरषन अनुग सदाशिव।**
**रमनक मछ मनु दास हिरन्य कूर्म अर्जम इव॥**
**कुरु बराह भूभृत्य बर्ष हरिसिंह प्रहलादा।**
**किंपुरुष राम कपि भरत नरायन बीनानादा॥**
**भद्रासु ग्रीवहय भद्रस्त्रव केतु काम कमला अनूप।**
**मध्यदीप नवखंड में भक्त जिते मम भूप॥**

**मूलार्थ** – मध्यद्वीप अर्थात् जम्बूद्वीपके नवों खण्डोंमें जो भक्त हैं, वे मेरे राजा हैं। यहाँ प्रत्येक खण्डका नाम, उनके अधीश्वर भगवान्‌का नाम, और उनके प्रसिद्ध परिकर भक्तके नामका वर्णन है। जैसे – (१) **इलावर्त** नामक खण्डके अधीश्वर भगवान् **संकर्षण** हैं, उनके अनुगामी **सदाशिव** हैं। (२) इसी प्रकार **रमणकखण्ड**के अधीश्वर भगवान् **मत्स्य** हैं, और उनके भक्त

**मनु** अर्थात् वैवस्वत मनु हैं, जिन्हें सत्यव्रत भीकहते हैं। (३) **हिरण्यखण्ड**के ईश्वर भगवान् **कूर्म** हैं, और उनके सेवक **अर्यमा** हैं। (४) इसी प्रकार **कुरुखण्ड**के अधीश्वर हैं भगवान् **वराह** और उनकी सेविका हैं **भूदेवी**। (५) इसी प्रकार **हरिवर्ष**खण्डके ईश्वर हैं भगवान् **नृसिंह** और उनके सेवक हैं परम भागवत **प्रह्लाद**। (६) **किंपुरुषखण्ड**के अधीश्वर हैं भगवान् **राम** और उनके सेवक हैं **श्रीहनुमान्‌जी** महाराज। (७) **भरतखण्ड**के अधीश्वर हैं **नारायण** और उनके सेवक हैं वीणापाणि **नारद**। (८) **भद्राश्वखण्ड**के अधीश्वर हैं **हयग्रीव** और उनके सेवक हैं **भद्रश्रवा**। (९) **केतुमालखण्ड**के अधीश्वर हैं भगवान् **कामेश्वर** और उनकी सेविका हैं अनुपमेय **कमला** अर्थात् लक्ष्मीजी।

॥ २६ ॥

**स्वेतद्वीप में दास जे श्रवन सुनो तिनकी कथा॥**
**श्रीनारायन ( को ) बदन निरंतर ताही देखैं।**
**पलक परै जो बीच कोटि जमजातन लेखैं॥**
**तिनके दरसन काज गए तहँ बीनाधारी।**
**स्याम दई कर सैन उलटि अब नहिं अधिकारी॥**
**नारायन आख्यान दृढ़ तहाँ प्रसंग नाहिन तथा।**
**स्वेतद्वीप में दास जे श्रवन सुनो तिनकी कथा॥**

**मूलार्थ** – श्वेतद्वीपके जो भक्त हैं, उनकी कथा कानसे सुनिये। वे श्रीनारायणके मुखकमलको निरन्तर निहारते रहते हैं। एक भी पलक पड़ने भरका जब अन्तर पड़ता है तो उन्हें करोड़ों यमयातनाओंके समान कष्ट होता है। एक बार श्वेतद्वीपके भक्तोंका दर्शन करनेके लिये वीणापाणि नारदजी वहाँ गए। श्वेतद्वीपके भक्त निरन्तर भगवान्‌को निहारनेमें मग्न थे। भगवान्‌ने नेत्रका संकेत देकर कहा – "लौट आओ, वहाँ कोई तुम्हारे ज्ञानका अधिकारी नहीं है।" जिस प्रकार अन्यत्र नारायणका आख्यान होता है, वह प्रसंग यहाँ नहीं है अर्थात् यहाँ कोई सुनेगा ही नहीं।

॥ २७ ॥

**उरग अष्टकुल द्वारपति सावधान हरिधाम थिति॥**
**इलापत्र मुख अनँत अनँत कीरति बिस्तारत।**
**पद्म संकु पन प्रगट ध्यान उरते नहीं टारत॥**
**अँशुकंबल बासुकी अजित आज्ञा अनुबरती।**
**करकोटक तच्छक सुभट्ट सेवा सिर धरती॥**
**आगमोक्त शिवसंहिता अगर एकरस भजन रति।**
**उरग अष्टकुल द्वारपति सावधान हरिधाम थिति॥**

**मूलार्थ** – भगवान् श्रीरामके साकेतके आठ श्रेष्ठ सर्प द्वारपाल हैं, जो सावधान होकर भगवान्‌के साकेत धाममें स्थित रहते हैं। उनके नाम हैं – (१) **इलापत्र** (२) **अनन्त** (३) **पद्म** (४) **शङ्कु** (५) **अंशुकम्बल** (६) **वासुकि** (७) **कर्कोटक** और (८) **तक्षक**। इनमेंसे इलापत्र और अनन्त – ये अनन्त मुखोंसे भगवान्‌की कीर्तिका विस्तार करते रहते हैं। पद्म और शङ्कु – इनका प्रण प्रकट है, ये अपने मनसे भगवान्‌के ध्यानको कभी नहीं दूर करते। अंशुकम्बल और वासुकि – ये निरन्तर अजित भगवान् श्रीरामकी आज्ञाका अनुवर्तन करते रहते हैं। कर्कोटक और तक्षक – ये वीर सेवा रूप पृथ्वीको अपने सिरपर धारण किये रहते हैं। श्रीअग्रदासजी कहते हैं कि ये आठों आगमोक्त शिवसंहिता अर्थात् अहिर्बुध्न्यसंहिताके अनुसार भगवान्‌की भक्तिमें एकरस मग्न रहते हैं।

**॥ श्रीः ॥**

**॥ समस्त भक्तोंकी जय हो ॥**

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# श्रीभक्तमालजीकी आरती

(रचयिता – जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य)

**आरति आरज भक्तमालकी। उर शोभा कौशिला लालकी॥**
**अग्रदास नारायण नाभा।**
**उद्धत अगम निगमको गाभा।**
**भक्त भक्ति भगवद्गुरु आभा।**
**प्रेम भक्ति वापी मरालकी॥ आरति आरज भक्तमालकी॥ १ ॥**
**चतुर चतुरयुग भक्त रसायन।**
**विविध विमल वैष्णव चरितायन।**
**पाप नसायन पुण्य परायन।**
**शमन सकल संसार जालकी॥ आरति आरज भक्तमालकी॥ २ ॥**
**राम कृष्ण प्रिय सुजस सुधारस।**
**सरस कवित पंडितजन सर्बस।**
**सीतापति सुनि होत भगतबस।**
**शरणागति रति बिरति पालकी॥ आरति आरज भक्तमालकी॥ ३ ॥**
**गोविन्द प्रियादास मन भाई।**
**राम सनेही चित हि लुभाई।**
**भाव सहित सुनि संतन गाई।**
**भव भय हर गिरिधर रसालकी॥ आरति आरज भक्तमालकी॥ ४ ॥**

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# सङ्केताक्षरसूची

| | |
|---|---|
| अ.को. | अमरकोष |
| अ.सं.प. | अगस्त्य संहिता परिशिष्ट |
| ई.उ.शा.पा. | ईशावास्य उपनिषद् शान्तिपाठ |
| क. | कवितावली |
| कृ.क.अ. | कृष्णकर्णामृत |
| गी. | गीतावली |
| गी.गो. | गीतगोविन्द |
| च.प.स्तो. | चर्पटपञ्जरिकास्तोत्र |
| ज.अ. | जगन्नाथाष्टक |
| तु.स.स. | तुलसी सतसई |
| दु.स.श. | दुर्गासप्तशती |
| भ.र.बो. | भक्तिरसबोधिनी |
| दो. | दोहावली |
| नी.श. | नीतिशतक |
| पा.गी. | पाण्डव गीता |
| पा.सू. | पाणिनि सूत्र (अष्टाध्यायी) |
| ब.रा. | बरवै रामायण |
| भ.गी. | श्रीमद्भगवद्गीता |
| भ.पु.प्रति.प. | भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व |
| भ.मा. | भक्तमाल |

| | |
|---|---|
| भ.र.बो. | भक्तिरसबोधिनी (प्रियादासजीकृत भक्तमालटीका) |
| भा.पु. | श्रीमद्भागवतपुराण |
| भा.पु.श्री.टी. | श्रीमद्भागवतपुराण श्रीधरटीका |
| भा.पु.श्री.टी.म. | श्रीमद्भागवतपुराण श्रीधरटीका मङ्गलाचरण |
| म.स्मृ | मनुस्मृति |
| मा. | श्रीरामचरितमानस |
| मा.पु. | मार्कण्डेय पुराण |
| मु.उ. | मुण्डक उपनिषद् |
| मे.को.धा.व. | मेदिनीकोष धान्तवर्ग |
| र.वं. | रघुवंश |
| रा.र.स्तो. | रामरक्षास्तोत्र |
| वा.रा. | वाल्मीकीय रामायण |
| वि.प. | विनयपत्रिका |
| वै.म.भा. | वैष्णवमताब्जभास्कर |
| स्क.पु.ब्र.ख.ध.मा. | स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड धर्मारण्यमाहात्म्य |
| स्क.पु.रे.ख.स.क. | स्कन्दपुराण रेवाखण्ड सत्यनारायणकथा |
| ह.बा. | हनुमान बाहुक |
| हि. | हितोपदेश |
| हि.प्र. | हितोपदेश प्रस्तावना |

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

# पदानुक्रमणिका


| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| अंघ्री अम्बुज पांसुको | ११ | ५४ |
| अंतरनिष्ठ नृपाल इक | ५७ | १२७ |
| अग्र अनुग्रहतें भए | १५० | २२७ |
| अग्र कहै त्रैलोक्यमें | २०० | २६७ |
| अग्रदास हरिभजन बिन | ४१ | ९७ |
| अग्रदेव आज्ञा दई | ४ | २० |
| अच्युतकुल जस इक बेरहूँ | २१२ | २७२ |
| अज्ञानध्वांत अंतःकरन | ७८ | १५५ |
| अनंतानंद पद परसिकै | ३७ | ९२ |
| अबला सरीर साधन सबल | १७० | २४३ |
| अभिलाष अधिक पूरनकरन | ९९ | १७४ |
| अभिलाष उभै खेमालका | १२१ | १९३ |
| अभिलाष भक्त अंगदको | ११३ | १८६ |
| अष्टांग जोग तन त्यागियो | १८२ | २५४ |
| आचारज जामातकी | ३३ | ८६ |
| आमेर अछत कूरमको | ११६ | १८९ |
| आसय अगाध दुहुँ भक्तको | ५१ | ११५ |
| आसुधीर उद्योत कर | ९१ | १६५ |
| इनकी कृपा और पुनि | ७ | ३५ |
| उत्कर्ष तिलक अरु दाम को | ९२ | १६७ |
| उत्कर्ष सुनत संतनिको | २०२ | २६९ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| उरग अष्टकुल द्वारपति | २७ | ७७ |
| एक भूप भागवतकी | ५६ | १२६ |
| और जुगनते कमलनयन | ५५ | १२५ |
| कठिन काल कलिजुगमें | १६० | २३४ |
| कन्हरदास संतनि कृपा | १७१ | २४४ |
| कबीर कानि राखी नहीं | ६० | १३२ |
| कबीर कृपाते परमतत्त्व | ६८ | १४५ |
| कमलाकरभट जगतमें | ८६ | १६१ |
| करुना छाया भक्तिफल | ९७ | १७२ |
| कलि कुटिल जीव निस्तारहित | १२९ | १९९ |
| कलिकाल कठिन जग जीति यों | १३५ | २१२ |
| कलिजीव जँजाली कारने | ४७ | १०९ |
| कलिजुग जुवतीजन भक्तराज | १०४ | १७७ |
| कलिजुग धर्मपालक प्रगट | ४२ | ९८ |
| कलिजुग भक्ति कररी कमान | ११९ | १९२ |
| कात्यायनिके प्रेमकी | १२७ | १९७ |
| काहूके बल जोग जग | २१४ | २७२ |
| कीरतन करत कर सपनेहूँ | १४४ | २२२ |
| कील्ह कृपा कीरति बिसद | १५८ | २३३ |
| कृष्ण कृपा कोपर प्रगट | ४६ | १०७ |
| कृष्नबिरह कुंतीसरीर | १२८ | १९८ |
| केवलराम कलिजुगके | १७३ | २४५ |
| खेमाल रतन राठौड़के | १२२ | १९४ |
| खेमाल रतन राठौरके | ११८ | १९१ |
| गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं | ४० | ९६ |
| गिरिधरन ग्वालगोपालको | १९४ | २६३ |
| गिरिधरन रीझि कृष्णदासको | ८१ | १५७ |
| गुनगन विसद गोपालके | १४६ | २२३ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| गुननिकर गदाधर भट्ट अति | १३८ | २१७ |
| गुरुगदित बचन सिष सत्य अति | ५८ | १२८ |
| गोपाली जनपोष कों | १९५ | २६३ |
| गोप्यकेलि रघुनाथकी | १३० | २०९ |
| गोबिंदचंद गुन ग्रंथनको | १६१ | २३५ |
| चतुर महंत दिग्गज चतुर | ३२ | ८५ |
| चतुर्भुज नृपकी भक्तिको | ११४ | १८७ |
| चरन चिन्ह रघुबीरके | ६ | ३० |
| चरनसरन चारन भगत | १३९ | २१७ |
| चारि जुगनमें जे भगत | २०७ | २७० |
| चारों जुग चतुर्भुज सदा | ५२ | ११७ |
| चालककी चरचरी चहूँ दिशि | १२४ | १९५ |
| चौबीस प्रथम हरि वपु धरे | २८ | ७९ |
| चौबीस रूप लीला रुचिर | ५ | २३ |
| जंगली देशके लोग सब | १३७ | २१४ |
| जग कीरति मंगल उदय | २०८ | २७१ |
| जगत बिदित नरसी भगत | १०८ | १८१ |
| जयदेव कवी नृपचक्कवै | ४४ | १०३ |
| जसवंत भक्त जैमालकी | १५५ | २३१ |
| जीवत जस पुनि परमपद | १६४ | २३८ |
| जे बसे बसत मथुरा मंडल | १०३ | १७७ |
| जो हरिप्राप्ति की आस है | २१० | २७१ |
| तत्वा जीवा दच्छिनदेस | ६९ | १४६ |
| तिन चरन धूरी मो भूरि सिर | १२ | ५९ |
| तिलक दाम परकामकों | १७९ | २५१ |
| दधीचि पाछे दूजी करी | १८५ | २५६ |
| दस आठ स्मृति जिन उच्चरी | १८ | ७० |
| दासनके दासत्वको | १६९ | २४२ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| दिवदासबंस यशोधर सदन | १०९ | १८३ |
| दुर्लभ मानुषदेहको | १९९ | २६६ |
| दूबरो जाहि दुनियाँ कहै | १६८ | २४२ |
| द्वारका देखि पालंटती | १४१ | २१९ |
| धन्य धना के भजन को | ६२ | १३८ |
| ध्यान चतुर्भुज चित धर्यो | १६ | ६७ |
| नंदकुँवर कृष्नदासको | १८० | २५२ |
| नरदेव उभय भाषा निपुन | १४० | २१८ |
| नाम देव प्रतिज्ञा निर्बही | ४३ | १०० |
| नित्यानन्द कृष्णचैतन्यकी | ७२ | १४९ |
| निपट नरहरियानन्दके | ६७ | १४४ |
| निमि अरु नव जोगेस्वरा | १३ | ६४ |
| निरबर्त्त भए संसारतें ते मेरे | १४७ | २२४ |
| निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास | ३८ | ९३ |
| निष्किंचन भक्तनि भजै | १७५ | २४७ |
| नृतक नारायणदासको | १४५ | २२२ |
| पदपंकज बाँछौं सदा | १० | ५० |
| पदपराग करुना करो | १४ | ६५ |
| पर अर्थ परायन भक्त ये | ९८ | १७३ |
| परमधरम प्रतिपोष कौं | १८१ | २५३ |
| परमहंस बंसनिमें | १०७ | १८० |
| पादप पेड़हिं सींचते | २०३ | २६९ |
| पारीष प्रसिध कुल काँथड़्या | १४३ | २२१ |
| पावैं भक्ति अनपायिनी जे | १९ | ७१ |
| पीपा प्रताप जग बासना | ६१ | १३५ |
| पूरन प्रगट महिमा अनंत | १८३ | २५५ |
| पृथ्वीराज नृपकुलबधू | १४२ | २२० |
| पैहारी प्रसादते सिष्य | ३९ | ९५ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| प्रगट अमित गुन प्रेमनिधि | १६७ | २४१ |
| प्रसाद अवज्ञा जानिकै | ५० | ११३ |
| फल की शोभा लाभ तरु | २०६ | २७० |
| बच्छहरन पीछे बिदित | ५४ | १२३ |
| बदरीनाथ उड़ीसे द्वारिका | १०१ | १७५ |
| बर्धमान गंगल गँभीर | ८२ | १५९ |
| बल्लभजूके बंसमें | १३१ | २१० |
| बल्लभजूके बंसमें | १३२ | २१० |
| बसन बढे कुंतीबधू | १५४ | २३० |
| बाल वृद्ध नर नारि गोप | २२ | ७३ |
| बिट्ठलदास माथुरमुकुट | ८४ | १६० |
| बिट्ठलदास हरिभक्तिके | १७७ | २४९ |
| बिट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों | ७९ | १५५ |
| बिट्ठलेससुत सुहृद श्री– | ८० | १५६ |
| बिदित बात जन जानिये | ६३ | १३९ |
| बिनय ब्यास मनो प्रगट ह्वै | ७० | १४७ |
| बिप्र सारस्वत घर जनम | १९७ | २६५ |
| बिमलानन्द प्रबोध बंस | १२५ | १९६ |
| बूड़िये बिदित कान्हरकृपालु | १९१ | २६० |
| ब्रज बड़े गोप पर्जन्य के | २१ | ७२ |
| ब्रजबधू रीति कलिजुग बिषे | ७४ | १५१ |
| ब्रजबल्लभ बल्लभ परम | ८८ | १६३ |
| ब्रजभूमि उपासक भट्ट सो | ८७ | १६२ |
| ब्रजराज सुबन संग सदन | २३ | ७४ |
| भक्त जिते भूलोकमें | २०४ | २६९ |
| भक्त भक्ति भगवंत गुरु | १ | १९ |
| भक्तदाम जिन जिन कहे | २१३ | २७२ |
| भक्तदाम संग्रह करै | २११ | २७१ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| भक्तनको आदर अधिक | ११७ | १९० |
| भक्तनसों कलिजुग भले | १५३ | २२९ |
| भक्तनहित भगवंत रची | १६५ | २३९ |
| भक्तनि सँग भगवान नित | ५३ | १२० |
| भक्तपच्छ उदारता | १८९ | २५९ |
| भक्तपाल दिग्गज भगत | १०० | १७५ |
| भक्तरतनमाला सुधन | १९२ | २६१ |
| भक्ति भार जूड़ै जुगल | १५७ | २३२ |
| भक्तिदान भय हरन भुज | ६४ | १४१ |
| भक्तेस भक्त भव तोषकर | १९३ | २६२ |
| भगवंत रचे भारी भगत | १७८ | २५० |
| भगवन्त मुदित ऊदार जस | १९८ | २६५ |
| भगवान दास श्रीसहित नित | १८८ | २५८ |
| भरतखंड भूधर सुमेरु | १५१ | २२८ |
| भली भाँति निबही भगति | १८६ | २५७ |
| भवप्रबाह निसतार हित | ९६ | १७० |
| भागवत भली बिधि कथनको | १३४ | २१२ |
| मंगल आदि बिचार रह | २ | २० |
| मदनमोहन सूरदासकी | १२६ | १९६ |
| मधुकरी माँगि सेवैं भगत | १४९ | २२६ |
| मधुपुरी महोछौ मंगलरूप | १५२ | २२८ |
| मध्यदीप नवखंड में | २५ | ७५ |
| महासती सत ऊपमा | ६६ | १४३ |
| महिमा महाप्रसादकी | ६५ | १४२ |
| माधव दृढ़ महि उपरै | ११२ | १८६ |
| मो चित्तबृत्ति नित तहँ रहो | ८ | ३८ |
| मोहन मिश्रित पदकमल | १७४ | २४६ |
| रघुनाथ गुसाईं गरुड ज्यों | ७१ | १४८ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| रमा पद्धति रामानुज | २९ | ८२ |
| रस रास उपासक भक्तराज | १५९ | २३४ |
| रसिक रंगीलो भजन पुंज | १३३ | २११ |
| रामदास परतापते | ८३ | १५९ |
| रामानँद रघुनाथ ज्यों | ३६ | ९० |
| रामानंद पद्धति प्रताप | ३५ | ८७ |
| रूपसनातन भक्तिजल | ९३ | १६७ |
| लट्यो लटेरा आन विधि | १७२ | २४५ |
| लोकलाज कुलशृंखला | ११५ | १८८ |
| विष्नुस्वामी संप्रदाय दृढ़ | ४८ | १११ |
| श्रीअगर सुगुरु परतापतें | १६६ | २४० |
| (श्री)अग्र अनुग्रहतें भए | १५० | २२७ |
| (श्री)अग्रदास हरिभजन बिन | ४१ | ९७ |
| (श्री)अग्रदेव आज्ञा दई | ४ | २० |
| श्रीकेसवभट नरमुकुटमनि | ७५ | १५२ |
| श्रीधर श्रीभागवत में | ४५ | १०४ |
| श्रीनंददास आनंदनिधि | ११० | १८४ |
| (श्री)नित्यानन्द कृष्णचैतन्यकी | ७२ | १४९ |
| (श्री)बल्लभजूके बंसमें | १३१ | २१० |
| (श्री)बल्लभजूके बंसमें | १३२ | २१० |
| (श्री)बिट्ठलेससुत सुहृद श्री– | ८० | १५६ |
| श्रीबृंदावनकी माधुरी | ९४ | १६८ |
| श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट | ७६ | १५३ |
| (श्री)मदनमोहन सूरदासकी | १२६ | १९६ |
| श्रीमारग उपदेस कृत | ३४ | ८७ |
| श्रीमुख पूजा संतकी | १०६ | १७९ |
| श्रीमूरति सब वैष्णव लघु | २०५ | २७० |
| (श्री)रघुनाथ गुसाईं गरुड ज्यों | ७१ | १४८ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| श्रीरसिकमुरारि उदार अति | ९५ | १६९ |
| श्रीरामदास रस रीतिसों | १९६ | २६४ |
| (श्री)रामानँद रघुनाथ ज्यों | ३६ | ९० |
| (श्री)रामानंद पद्धति प्रताप | ३५ | ८७ |
| श्रीरामानुजपद्धति प्रताप | १८४ | २५५ |
| (श्री)रूपसनातन भक्तिजल | ९३ | १६७ |
| श्रीस्वामी चतुरोनगन | १४८ | २२५ |
| (श्री)हरिबंसगुसाईं भजनकी | ९० | १६५ |
| (श्री)हरिबंसचरण बल चतुर्भुज | १२३ | १९५ |
| संतन निर्नय कियो मथि | ३ | २० |
| संतसाखि जानत सबै | ४९ | ११३ |
| संदेह ग्रंथि खंडन निपुन | ५९ | १२९ |
| संप्रदायसिरोमनि सिंधुजा | ३० | ८३ |
| संसार सकल ब्यापक भई | १११ | १८५ |
| संसार स्वाद सुख बांत ज्यों | ८९ | १६३ |
| सखा स्याम मन भावतो | १६२ | २३६ |
| सप्त द्वीप में दास जे | २४ | ७५ |
| सहस आस्य उपदेस करि | ३१ | ८४ |
| साधन साध्य सत्रह पुरान | १७ | ६९ |
| सुभ दृष्टि वृष्टि मोपर करौ | २० | ७१ |
| सूर कबित सुनि कौन कबि | ७३ | १५१ |
| सोति श्लाघ्य संतनि सभा | १६३ | २३७ |
| सोदर सोभूरामके | १९० | २६० |
| स्वेतद्वीप में दास जे | २६ | ७६ |
| हरि सुजस प्रचुर कर जगतमें | १०२ | १७६ |
| हरि सुजस प्रीति हरिदासको | २०१ | २६८ |
| हरिके सम्मत जे भगत | १०५ | १७८ |
| हरिगुरु हरिदासनसों | १२० | १९३ |

| पद | संख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| हरिजनके जस बरनते | २०९ | २७१ |
| हरिदास भक्तनि हित धनि | १५६ | २३२ |
| हरिदास भलप्पन भजनबल | १३६ | २१३ |
| हरिप्रसाद रसस्वादके | १५ | ६६ |
| हरिबंसगुसाईं भजनकी | ९० | १६५ |
| हरिबंसचरण बल चतुर्भुज | १२३ | १९५ |
| हरिबल्लभ सब प्रारथों | ९ | ३९ |
| हरिब्यास तेज हरिभजन बल | ७७ | १५४ |
| हरिभक्ति भलाई गुन गंभीर | १७६ | २४८ |
| हरिभजन सींव स्वामी सरस | १८७ | २५८ |
| हरिराम हठीले भजनबल | ८५ | १६१ |

देश और विदेशोंमें प्रतिष्ठित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य भारतके प्रख्यात विद्वान्, शिक्षाविद्, बहुभाषाविद्, महाकवि, भाष्यकार, दार्शनिक, रचनाकार, संगीतकार, प्रवचनकार, कथाकार, और हिन्दू धर्मगुरु हैं। वे चित्रकूट स्थित तुलसीपीठके संस्थापक और अध्यक्ष हैं, और चित्रकूटके जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालयके संस्थापक और आजीवन कुलाधिपति हैं। दो मासकी अल्पायुसे प्रज्ञाचक्षु स्वामी रामभद्राचार्य २२ भाषाओंके ज्ञाता, अनेक भाषाओंमें आशुकवि, और शताधिक ग्रन्थोंके रचयिता हैं। उनकी रचनाओंमें चार महाकाव्य (दो संस्कृत और दो हिन्दीमें), रामचरितमानसपर हिन्दी टीका, अष्टाध्यायीपर गद्य और पद्यमें संस्कृत टीका, और प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता और प्रधान उपनिषदों) पर संस्कृत और हिन्दी भाष्य सम्मिलित हैं। स्वामी रामभद्राचार्य तुलसीदासपर भारतके मूर्धन्य विशेषज्ञोंमें गिने जाते हैं और वे रामचरितमानसकी एक प्रामाणिक प्रतिके सम्पादक हैं।

ISBN 978-93-82253-04-4